॥ ओ३म् ॥

असतो मा सद्गमय-तमसो मा ज्योतिर्गमय-मृत्योर्मामृतं गमय ।

"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"

"श्रद्धा साहित्य प्रकाशन का ३७ वाँ पुण्य"

वैदिक रश्मियाँ [भाग-४]

लेखक–वेदरत्न, प्रो० रामप्रसाद वेदालंकार

आचार्य एवं उपकुलपति (Pro-Vice-Chancellor)

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उ०प्र०

आचार्य गोवर्धन शास्त्री स्मृति पुस्कार (१९८१) से सम्मानित एवं पुरस्कृत **द्वारा–"संगढ़ विद्या सभा ट्रस्ट, जयपुर ।**

आर्य साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट सेवाओं के उपलक्ष्य में सम्मानित एवं पुरस्कृत (१९८३ में) द्वारा महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी समारोह समिति अजमेर

"वेदरत्न"-मानद उपाधि (१९८४ में) विश्ववेद परिषद

पता— वेदरत्न, प्रो० राम प्रसाद वेदालंकार

वेदसदन, आर्यनगर, ज्वालापुर, जि०हरिद्वार (उ.प्र.)

पिन–२४९४०७ [फोन-७९६७]

प्रकाशन—

श्रीमति सरोज आर्या, अध्यक्ष श्रद्धा साहित्य प्रकाशन

वेद सदन, आर्यनगर ज्वालापुर जि० हरिद्वार

प्रथम सं० ४०००, दयानन्दाब्द १६७ अप्रैल १९९१

वि० संवत् बैशाख २०४८

नोट– पुस्तक विक्रेता आदि को श्रद्धा साहित्य प्रकाशन के लिये ३.५० दान देकर भी यह पुस्तक प्राप्त की जा सकती है ।

विषय सूची

क्र०सं० पृष्ठ

क्र०सं०[१] जिनकी पुण्य स्मृति में पुस्तक प्रकाशित हुई ३

[२[भूमिका, समर्पण ६

१. प्रथम रश्मि: सहृदयं साम्मनस्यं कृणोमि वः ७

२. द्वितीय रश्मि: अविद्वेषं कृणोमि वः २०

३. तृतीय रश्मि: अन्यो अन्यमभि हर्यंत २४

४. चतुर्थ ,, अनुव्रत: पितु: पुत्र: । २८

५. पञ्चम ,, मात्रा भवतु सम्मना:

६. षष्ठ ,, जाया पत्येम धुमती वाचवदतु शन्तिवाम्३६

७. सप्तम ,, "मा भ्राता भ्रातंर द्विक्षन् ।" ४६

८. अष्टम ,, मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मास्वसारम् ५७

९. नवम ,, ज्यायस्वन्तश्चित्तिन: ६७

१०. दशम ,, अन्योऽन्यस्मै वल्गु ८८

मूल्य:— श्रद्धा साहित्य, प्रकाशन से सरल सुबोध रूप में प्रकाशित होने वाला वैदिक साहित्य दानियां के दान से प्रकाशित होकर सुपात्रों को देने का प्रयास किया जाता है। पढना-पढाना और सुनना-सुनाना इस का मूल्य है। जो महानुभाव इस साहित्य को उपयोगी समझकर मंगाना चाहें वा इसमें अपना आर्थिक सहयोग देना चाहे वे लेखक वा प्रकाशक के पते पर पत्र व्यवहार करें।
न्यून से न्यून १०० का दान किसी एक पुस्तक की दान सूची में प्रकाशित किया जायेगा।

विनीत:- **राम प्रसाद वेदालंकार**

"आदरणीय बहिन लाजवन्ती जी," जिनकी स्मृति में यह पुस्तक छपी

स्वर्गीय बहिन लाजवन्ती जी पूज्य माता परमेश्वरी देवी एवं पूजनीय पितृवर श्री विष्णुदत्त आर्य की द्वितीय सुपुत्री थी। माता जी ने जहां उनको पर्याप्त लाड दिया वहां उनको अपने सुनियन्त्रण में रखकर सुशील एवं अत्यन्त कर्मठ बनाया। पिता ने सुदृढ़ आर्य होने के कारण इन्हें सदा सत्संगों में लेजा-लेजा कर धर्मपरायण एवं सुदृढ़ ईश्वर विश्वसिनी बनाया।भारत-पाक विभाजन के पूर्व से इनका विवाह हो गया था। पर यह सौभाग्य सुदीर्घकाल तक नहीं रहा। शीघ्र इनके पति देव स्वर्गसिधार गए। पूज्य बहिन जी को धक्का तो बहुत लगा पर धर्मपरायण होने से सत्संग एवं ईश्वर विश्वास तथा कर्मठ जीवन से विधवा आश्रमों में जीवन के पर्याप्त काल तक सेवा करके उन्होंने बहुत स्नेह-सम्मान पाया। वे समय समय पर इधर-उधर से कुछ संग्रह कर उनकी सेवा सहायता करती रहीं। जीवन में ये सब कार्य प्रायः वे मूकरूप में बिना प्रदर्शन के ही करती रहती थीं।

उन सब बहिनों एवं उनके परिवारों के दुःखों को,कष्टों को देख-देख वे अपना दुःख तो भूल सी गई थीं। प्रायः इन्हीं आश्रमस्थ माताओं-बहनों का दुःख उनके सामने रहता था और उसे दूर करने के लिये वे अपनी शक्ति और परिचय के आधार पर उनकी कुछ सेवा कर पाती थीं।उनके पति देव श्री चेतन दास एक मात्र अपने सुपुत्र श्री कैलाश चन्द नागपाल को पीछे छोड़ गए थे। पूज्य बहिन जी तो विधवा आश्रमों में ही विभिन्न पदों पर रहती हुई इन सबकी

सेवा में प्राय: इतनी तल्लीन रहती थीं कि अपने पुत्र की ओर वे विशेष ध्यान ही नहीं दे पाती थीं। अत: यह अपनो नन्हाल में ही अपने मामा मोसियों में ही बड़े लाड़-प्यार से भाई बहिनों की तरह पलता रहा। इसका ही परिणाम है कि आज वह अपने सभी मामा-मोसियों से भाई-बहनों को तरह सब व्यवहार करता है और भाईयों की तरह ही सब उत्तर दायित्वों को जी-जान से निभा रहा हैं।

पूज्य बहिन जी के भीतर कुछ ऐसे विलक्षण गुण थे कि उन्होंने बर्बस लेखक [मुझ]को भी बहुत प्रभावित किया। दीनों पर दया, विद्वानों पर श्रद्धा, ईश्वर पर दृढ़ विश्वास, दु:खों को ऐसे सहन करना जैसे कि मानो कुछ दु:ख ही नहीं हो। दूसरों के दु:खों को धैर्य से सुनना और उनके निवारण के लिये दौढ़-धूप करना इत्यादि, ऐसे अनेकों गुणों के कारण वे अपने कष्टों को प्राय: भूली सी रहती थीं। यहां तक कि वे आश्रमों में विधवाओं के पुत्रों को ही स्वपुत्र मानकर उनके हित में सदा संलग्न रहती थीं। उनका पुत्र प्रियवर कैलाश चन्द्र तो नन्हाल में ही पढ़ कर सर्विस में लग गया। पर विवाह के उपरान्त इसकी अर्धाङ्गिनी श्रीमती पूनम नागपाल फरीदाबाद में घर पर उनकी सेवा करती रही। बहिन जी के रिटायर होने पर वे घर पर ही रही, तो इस बहु (पूनम जी) ने उनकी जी-जान से सेवा की। अपने समय से पूर्व रिटायर होकर माँ को अस्वस्थ देखकर इस सुपुत्र कैलाश चन्द्र जी ने भी अपनी पूज्य माता जी को दिल से सेवा की। पूज्य बहिन जो ने स्वयं तो त्याग तप का जीवन व्यतीतकिया पर अपने धन-वैभव से उन्होंने अपने बहिन भाईयों और दीन-दुखियों

की सेवा की। इसका ही परिणाम है कि अब उनके पारिवारिक-जनों में जो उनके प्रति स्नेह-सम्मान की भावना है, वह देखते ही बनती है। इधर दीनदुःखी माताएं बहिनें भी आज उस पूज्य बहिन जी को याद कर-करके उनके बहु-बेटे को जी-जान से स्नेह-लाड देती हैं। ऐसी पूज्य माँ की पुण्य स्मृति में उनकी प्रिय बहु श्रीमति पूनम एवं श्री कैलाश चन्द्र नागपाल अपने मुख्य दान से पुस्तक "वैदिक रश्मियां भाग-४" प्रकाशित करवा रहे हैं। इस के स्वाध्याय से स्वाध्याय प्रेमियों को यदि जीवन में कुछ आगे बढ़ने और ऊपर उठने की प्रेरणा मिली तो लेखक एवं दानदाता अपनी लेखनी और अर्थ को सार्थक समझेंगे।

विनीतः— राम प्रसाद वेदालंकार

भूमिका

यह पुस्तक अथर्ववेद के साम्मनस्य सूक्त ३.३० की कुछ सूक्तियों को लेकर लिखी गई है। इन सूक्तियों का जब मैंने मनन किया तो मुझे बहुत अच्छा लगा। इन के आधार पर मैंने जब दो चार सूक्तियों पर लेख लिखे, तो उन्हीं दिनों लखनऊ की ओर से एक माता जी पधारीं। उनके दुःखी हृदय को इन से कुछ धीरज और प्रेरणा मिले, इसलिये उन को इन्हें सुना दिया। उनका कहना था कि "यदि ये लेख मुझे दे देवें तो मैं कई बार इन्हें पढ़कर लाभ उठा सकूँ।"तो इस परमैंने पुनः १० रश्मियों के रूप में इसे प्रकाशित कर अन्य अनेकों हाथों में भी इस पुस्तक को पहुंचाना उचित समझा। अतः स्वाध्याय प्रेमियों को इसके स्वाध्याय से राहत मिली तो लेखक, प्रकाशक अपनी लेखनी और अर्थ को सार्थक समझेंगे।

समर्पण

जिस परम पिता परमेश्वर की अपार अनुकम्पा एवं अपने गुरूजनों के उदार हृदय से प्रदान किये हुए ज्ञान प्रसाद एवं आशीर्वाद से मैं श्रद्धा साहित्य प्रकाशन के इस ३७ वें पुष्प वैदिक रश्मियाँ, भाग-४ को आप के कर कमलों तक पहुंचा सका, उन्हीं के पावन चरणों में मेरा यह अल्प प्रयास समर्पित हैं।

विनीत:- वेदरत्न, रामप्रसाद वेदालंकार

प्रथम रश्मि:

"सहृदयं साम्मनस्यं कृणोमि वः । अ० ३.३०.१ ।"

मैं तुम्हें सहृदय युक्त, सांमनस्य युक्त करता हूँ ।

संक्षिप्त अन्वयार्थ :— [अहम्] (वः सहृदयं सांमनस्यं कृणोमि) मैं तुम सबको सहृदय और साम्मनस्य वाला बनाता हूँ ।

परम पिता परमेश्वर गृहस्थ परिवार, समाज, राष्ट्र वा संसार में रहने वाले हम मनुष्यो को सहृदय युक्त और सांम-नस्ययुक्त करना चाहता है । यही कारण है कि जिसकी बजह से वह हमें वेद में यह उपदेश देता है कि हे घर—परिवार, समाज, राष्ट्र, देश वा संसार में रहने वाले मनुष्यो ! मैं तुम सबको सहृदय वाला, सांमनस्य वाला बनाना चाहता हूँ । अर्थात् मैं चाहता हूँ कि तुम सब में परस्पर सहृदयता रहे, सामनस्य रहे । क्योंकि सहृदयता और सांमनस्य पूर्वक तुम रहोगे तो तभी तुम परस्पर सुख शान्ति और आनन्द से अपना जीवन व्यतीत कर सकोगे ।

परमेश्वर चाहता है कि घर परिवार वा राष्ट्रादि में हम सब मनुष्यों में सहृदयता रहे, साम्मनस्य रहे । जैसा वह चाहता है वैसा ही वह वेद द्वारा उपदेश देता है और वैसा ही वह हम सबको भीतर से प्रेरणा भी करता है ।

अब यह सहृदयता क्या है, साम्मनस्य क्या है ? सहृदयता है—समान हृदयता। यदि परिवार वा समाज में एक व्यक्ति दुःखी है–कष्ट में है वा सुखी है–प्रसन्न है तो उस व्यक्ति के दुःख में–कष्ट में अगर दूसरा व्यक्ति भी दुःखी है, कष्ट में है या उस व्यक्ति के सुख में दूसरा व्यक्ति भी सुखी है, प्रसन्न है, तो इसी का नाम सहृदयता है।

सचमुच ऐसी सहृदयता जब घर परिवार, समाज वा राष्ट्र आदि में घर कर जाती है तो फिर दुःखियों का दुःख हलका हो जाता है, उनका दुःख घर परिवार वा समाज के सदस्यो की हार्दिक सहानुभूति से फिर भारी नहीं रहता। और अगर घर परिवार का एक सदस्य प्रसन्न हो जाता है, तो अन्य भी उस की प्रसन्नता में प्रसन्नता अनुभव करते हैं, उस की खुशी में फूले नहीं समाते। इस सहृदयता के कारण वे सब परस्पर घनिष्टता पूर्वक जुड़े रहते हैं। जैसे किसी की चोरी हो जाती है, किसी का कुछ गुम हो जाता है, कुछ खो जाता है, कुछ नुकसान हो जाता है, किसी को चोट लग जाती है, किसी को बुखार हो जाता है, किसी के पेट में पीडा हो जाती है, या किसी को कोई रोग कष्ट आपत्ति-विपत्ति, आ घेरती है, तो तब वह हैरान-परेशान हो जाता हैं, और कई बार वह इतना दुःखी हो जाता है, कि सब के सम्मुख अपने आप को वह हीन समझने लगता है। सब परिवार के लोग भी सेवा कर-कर के परेशान हो जाते हैं, तब उसको देखने के लिए अपनी एक बड़ी बहिन आती है। भाई की दीन–हीन दशा को देखकर उसके दुःख में दुःखी होकर उसके हृदय में स्नेह – सहानुभूति का स्रोत बहने लगता है। उसके

उन स्नेह सहानुभूति और प्यार भरे शब्दों से उस को जो सांत्वना मिलती है, इसका उसके स्वास्थ्य और मन पर जो प्रभाव पडता है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । जब बहिन ने अपने घर वापिस जाने का नाम लिया तो उस भाई का दिल भर आया । तब उसकी पत्नी ने उस बहिन जी से कहा कि— "देखो बहिन जी, जब से आप आई हैं और इन के समीप बैठती–उठती वा बातचीत करती हैं, तो इनको अपना दुःख भूला सा रहता है। समय पर नींद भी आती है । और यह ऐसा अनुभव करते हैं कि जैसे इनका दुःख आधा रह गया हो । आप कुछ समय और ठहर जायें तो हमें यह विश्वास है कि यह बहुत जल्दी ठीक हो जायेंगे ।

सचमुच बहिन उसके दुःख में दुःखी हो कर स्नेह–प्रेम और सहानुभूति से जब उन्हें दवा देती थी और कहती थी कि "भइया, मुझे विश्वास है कि इस दवा से तुम्हें जल्दी ही आराम आ जायेगा।" तो सचमुच उस दवा में उसकी दुआ भी मिलकर भाई पर जादू का सा असर करती थो । अन्त में वह ठीक ठाक हो गया । पर अपनी बहिन की उस सहृदयता प्रेम–सहानुभूति के लिये आज भी वह बड़ी कृतज्ञता अनुभव करता है ।

एक बेटी स्कूल में पढ़ती है, उसने क्या देखा कि उसकी क्लास की एक लड़की के पास पुस्तक नहीं है। उसको अपनी अध्यापिका भी बहुत डांटती है। पर गरीबी के कारण चाहती हुई भी वह पुस्तक खरीद नहीं पाती । उसकी इस स्थिति को उसकी क्लास की एक बच्ची भांप गई और उसने अपने

पिता से कहा- "पिता जी, हमारी कक्षा में एक लड़की है जो बहुत योग्य है, पर गरीब बहुत है। पुस्तक आदि खरीद नहीं सकती और उसके अभाव में वह बड़ी दुःखी रहती है। पिताजी, क्या आप उसे वह पुस्तक ले देंगे ? बेटी वह पुस्तक कितने की आती है ? "पिताजी ! ६ रुपये ५० पैसे को, पिताजी बोले, "यह लो बेटी ६ रुपये ५० पैसे । उसे यह पुस्तक लेकर दे देना।" उस बेटी ने उसको वह पुस्तक लेकर देदी। इस पर वह बच्ची बड़ी प्रसन्न हुई और रोम-रोम से उस लड़की के प्रति कृतज्ञता अनुभव की और धन्यवाद भी दिया।

राम के सम्मुख जब सुग्रीव ने अपनी व्यथा सुनाई तो राम सहृदयता के वशीभूत होकर उसके दुःख को अपना दुःख अनुभव करने लगे। इसी सहृदयता के कारण राम ने बाली को मार कर सुग्रीव को उनकी पत्नी और राज्य दिलाया।

कन्या गुरुकुल नरेला में एक बेटी का जब पता लगा कि मेरी क्लास की एक कन्या सतत पढ़ना चाहती है, पर उसका पिता उसका खर्च आदि वहन नहीं कर सकता। अपनी सखी के इस दुःख को जानकर उससे रहा नहीं गया, तो उसने अपने पिता से यह सब कुछ सुनाया और कहा कि "पिताजी। क्या आप मेरी तरह उसको अपनी बेटी मान कर उसका खर्च वहन कर सकेंगे ?" बेटी की, सहेली के प्रति उस सहृदयता, स्नेह एवं सहानुभूति पूर्ण बात को सुनकर उसके पिता ने झट कह दिया "बेटी ! सचमुच यदि उसकी यह स्थिति है तो मैं आगे से जो भी खर्चा तेरे लिये भेजूंगा, वही तेरी सहेली के लिए भी भेज दिया करूंगा।" इसके बाद

वर्षों तक वह सज्जन अपनी पुत्री के साथ-साथ उस का भी व्यय भेजता रहा।

सहृदयता वस्तुतः वह चीज है जो मनुष्य को दूसरे के दुःख में दुःखी, दूसरे के कष्ट में कष्टमय, दूसरे के अभाव में अभावमय बना देती हैं। इसके परिणामस्वरूप फिर मनुष्य में उस व्यक्ति के प्रति स्नेह-सहानुभूति उत्पन्न होती है। फिर जैसे वह अपने दुःख को दूर करने का प्रयास करता है वैसे ही वह दूसरे के दुःख को भी दूर करने का प्रयास करता है, जैसे वह अपने कष्ट-क्लेश से अपने को मुक्त करने का प्रयास करता है, वैसे ही वह दूसरे के कष्ट व क्लेश को भी अपना कष्ट-कलेश मानकर उस से उस को मुक्त करने का प्रयास करता है, जैसे वह अपने अभाव को दूर करने के लिए दौड़-धूप करता है, वैसे ही वह दूसरे के अभाव को भी दूर करने के लिये पुरुषार्थ करता है।

जिस घर में-जिस परिवार में, जिस समाज में परस्पर सहृदयता वर्तमान रहती है, वहां फिर दूसरों को प्रसन्न देखकर, दूसरों को उन्नत-समुन्नत देखकर दूसरों का धन-वैभव से बढ़ता हुआ देखकर, दूसरों को सुप्रतिष्ठित देखकर, दूसरों को हरा-भरा देखकर, मनुष्यों में ईर्ष्या, द्वेष, जलन, कुढ़न आदि नहीं होती वरन् वे तो जब उन्हें बढ़ता हुआ, समुन्नत होता हुआ, धन-वैभव से सम्पन्न होता हुआ, हरा-भरा, नाचता-गाता हुआ, देखते हैं तो उन्हें ऐसा लगता है कि जैसे वे स्वयं ही बढ़ रहे हों, जैसे वे स्वयं ही उन्नत-समुन्नत हो रहे हों, जैसे वे स्वयं ही धन-वैभव से सम्पन्न हो रहे हों, हर प्रकार

से हरे-भरे हो रहे हों। तभी तो वे उनकी खुशी को अपनी खुशी मानकर नाचते-गाते और खुश होते रहते हैं।

सच कहा जाय तो सहृदयता घर–परिवार समाज का वह गुण है, कि जिस से घर-परिवार, समाज में वर्तमान रहने पर कितना भी कोई यत्न क्यों न करे, उस घर परिवार, समाज के सदस्यों को आपस में पृथक नहीं कर सकता। पर अगर घर परिबार और समाज में यह सहृदयता न रहे तो फिर कोई उनको परस्पर जोड़ भी नहीं सकता। इसी के कारण ही तो मनुष्यों में, परस्पर स्नेह-सहानुभूति उत्पन्न होती है,और फिर वे एक दूसरे के काम आते हैं-एक दूसरे का सहयोग करते हैं। यह परस्पर का स्नेह–प्रेम ही उन्हे एक दूसरे से जोड़ कर रखता है, एक दूसरे से आवद्ध किये रखता है। यही उपर्युक्त वेद मन्त्र का आशय है, और यही प्यारे प्रभु का अभिप्राय है।

केवल यह नहीं कि प्रभु केवल हममें सहृदयता ही भरना चाहता है, वह तो इससे आगे बढ़कर हममें साम्मनस्य भी भरना चाहता है-समान मनस्कता भी भरना चाहता है, ताकि हमारे घर-परिवार और समाज में परस्पर एक दूसरे के प्रति किया हुआ चिन्तन ज्ञान पूवक हो-बुद्धि पूर्वक हो विवेक पूर्वक हो।

इस प्रकार प्रभु प्रदत्त वेदोपदेश द्वारा वा प्रभ प्यारे की भीतर से दी हुई प्रेरणा के द्वारा जब हमारे हृदय में दूसरों के प्रति सहृदयता होगी तो फिर हम में उन के

लिए साम्मनस्य—समान मनस्कता भी होगी । अर्थात् हम दूसरों के लिये सम्यक प्रकार से सोच सकेंगे—ठीक प्रकार से विचार कर सकेंगे । अब जब हम वा दूसरे सहृदयता के कारण जब परस्पर एक दूसरे के प्रति सम्यक प्रकार से ठीक प्रकार से या एकत्व की भावना से ज्ञान पूर्वक–विवेक पूर्वक सोच विचार सकेंगे तो फिर निःसन्देह वे एक दूसरे के प्रति अच्छा से अच्छा, बढ़िया से बढ़िया, उत्तम से उत्तम व्यवहार भी कर सकेंगे ।

प्रभु कृपा से घर–परिवार के मनुष्यों में जब सहृदयता होती है तो फिर वे एक दूसरे के दुःख–सुख को अपना ही दुःख–सुख समझ कर सब कार्य करने लगते हैं । इस प्रकार फिर वह घर–परिवार वा समाज बड़ा ही सुखी रहता है । यहां तक कि दुःख के दिन भी फिर उनके सहज रूप से ही व्यतीत हो जाते हैं ।

घर में पत्नी बीमार होती है तो पति सहृदयता के कारण उसके कष्ट को अपना कष्ट मान लेता है । उसके कष्ट को अपना कष्ट मानने पर फिर उसमें साम्मनस्य–समान मनस्कता पैदा होती है । तब वह अपनी नारी के सनान ही उस का कष्ट दूर करना चाहता है । इस लिये वह इसके लिये दौड़–धूप करता है, दवा–दारु करता है, मौसमी अंगूर आदि फल लाता है, खान पान की हल्की–फुलको वस्तु लाता है, जिससे कि उस की पत्नी शीघ्र हो पुनः पूर्ववत् स्वस्थ होकर अपने घर-परिवार को सम्भाल कर प्रसन्न रह सके । नारी भी जब पति के कष्ट को देखती है, और सोचती है कि वह उसके मायके चले जाने पर या रुग्ण हो जाने पर स्वयं दाल–रोटी आदि बनाता

है, या दुग्ध आदि गर्म करके पी लेता है, या फिर कभी आलस्य वश बिना कुछ वनाए और खाये,पियेअपने कार्य पर चला जाता है,या सो जाता है, तो फिर उसको नारी बहुत अनुभव करती है। फिर वह शीघ्रतिशीघ्र ही मायके से भागी चली आती है वा शीघ्राति–शीघ्र ओषधादि लेकर, अनुकूल पदार्थों का सेवन करती हुई प्रभु से प्रार्थना करती है कि प्रभुवर उसे शीघ्र ठीक करे–स्वस्थ करे, ताकि वह अपने पति, पुत्रों एवं आये–गये की जी जान से सेवा–शुश्रूषा आदि कर सके और अपने घर–परिवार को सुखी बना सके।

मां–बाप अपने बच्चों की आवश्यकताओं को जब सहृदय–तावश देखते हैं वा उनकी इच्छाओं–कामनाओं को देखते हैं, तो तब उनमें साम्मनस्य पैदा होता है–उनके समान सोचना-विचारना और चाहना आरम्भ हो जाता है,तभी तोफिर वे तुरन्त उन बच्चों की आवश्यकताओं की, उनकी इच्छाओं की पूर्ति के लिये अपनी आवश्यकताओं तथा इच्छाओं को गौण कर देते हैं। उस समय बच्चों की इच्छाओं और आवश्यकताओं के पूर्ण होने पर बच्चों को जो प्रसन्नता जो खुशी होती है, उसे देख कर उनके मां–बाप को उनसे भी बढ़कर प्रसन्नता होती है।

एक बच्चा नवीं कक्षा में आया। स्कूल दूर था। पुत्र ने अपने मां–बाप से कहा कि–"पिता जी ! आप मुझे साईकिल ले दो,क्योंकि स्कूल इतना दूर है कि बहुत सा समय तो मेरा आने-जाने में ही लग जाता है।"या फिर यों हो बच्चे की साईकिल लेने की इच्छा हुई और उसने अपने माता–पिता से साईकिल की इच्छा अभिव्यक्त की। इस पर माता–पिता में सहृदयता

भी तो थी ही, प्रभु कृपा से धन-वैभव की भी कमी नहीं थी, या थी भी तो सहृदयता वश अन्य खर्चों में कटौती भी करने को तैयार हो गये । इस पर दोनों के हृदय में साम्मनस्य पैदा हुआ । वे बच्चे के मन से अपने मन को एक करके उन्हीं के समान साईकिल की आवश्यकता अनुभव करने लगे वा उसकी इच्छा को अपनी इच्छा मानने लगे, तभी वे साईकिल लेने पहुँच गये । ऐसे ही दिल्ली में बस की इन्तिजार में घण्टों नष्ट हो जाते हैं, आफिस बहुत दूर है, पैदल जाया नहीं जा सकता, थ्री व्हीलर वा टैक्सी में जाया जाये तो १५ दिवस में ही सारा वेतन समाप्त हो जाए। आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है कि स्कूटर खरीदा जा सके। पत्नी ने पति के इस कष्ट को सहृदयता वश अनुभव किया और अपने पति की इस जरूरत को-आव–श्यकता को तह दिल से समझा, तब साम्मनस्य के कारण उसमें स्नेह–सहानुभूति और तदनुसार उपाय करने की वृत्ति–प्रवृत्ति पैदा हुई, तो तब उसे एक दिन यह सूज आई कि मैं इन चूड़ियों को पहन कर क्या करूँगी जबकि पति को इतना कष्ट है ? सुहाग का चिह्न चूड़ियां हैं, तो वे तो कांच की भी पहनी जा सकती हैं, जो दो चार रुपये की आजायेंगी, । बस फिर क्या था उन्हें बेच दिया और पति को स्कूटर ले दिया । पति ने कहा–"देवी, यह तूने क्या किया, पत्नी बोली–"पति देव! मेरा आभूषण तो आप हैं । मैं आप से अलंकृत हूँ, इन चूड़ियों से नहीं, हाँ सुहाग का चिह्न हैं यदि वे चूड़ियां तो काँच की चूड़ियाँ पहन कर भी गुजारा किया जा सकता है। अत : आप अनुभव न करें, वे तो मैं ले आई हूं···। ,, पति ने पत्नी

के इस दिव्य त्याग को देखा, तो उनका रोम-रोम खिल गया और उसने उसे हृदय से साधुवाद दिया। सचमुच जहाँ सहृदयता होती है, वहाँ साम्मनस्य होता है, और जहाँ साम्मनस्य होता है वहाँ घर-परिवार के सब सदस्य किसी वस्तु के अभाव में भी दिव्य त्याग और तपोमयी भावनाओं एवं व्यवहारों के कारण हो सदा बड़े सुखी और प्रसन्न रहते हैं।

हम नारी को देखते हैं जब वह पति लोक में आती है, तो उस के हृदय में पति के लिये सहृदयता होती है। सहृदयतावश वह ज्यों-ज्यों पति की भावनाओं को, इच्छाओं को, रुचियों को जानती जाती है, त्यों-त्यों ही वह उस के समान मन वाली होकर वैसा हो वह सोचने लगता है, वैसा ही वह करने लगती है। पति को खीर अच्छी लगती है, या राजमाँ–चावल बहुत अच्छे लगते हैं या उड़द की दाल, गोभी की भाजी अधिक अच्छी लगती है या गाजर आलू की सब्जी, तो फिर वही चीजें वह बनाना चाहती हैं,वैसा हो वह सोचने लगती है और वैसा ही वह करने लगती है। उसे स्वयं जो कुछ अच्छा लगता है वह सब कुछ तो वह फिर बना ही नहीं पाती। क्योंकि वह अपनी इच्छाओं और अपनी रुचियों से तो फिर बहुत ऊपर उठ जाती है। नारी के इस त्याग–तप से पति बहुत प्रसन्न रहता है। और अपने पति को प्रसन्न देखकर फिर वह नारी भी दिल से फूली नहीं समाती। पति घर पर आते हुए सहृदयतावश सोचता है कि– "मेरी पत्नी को क्या अच्छा लगता है या फिर उसके स्वास्थ्य के लिये अनुकूल क्या है? तो फिर वह सांमनस्य के कारण-वैसा ही सोचता–विचारता हुआ

वही वस्तु ही घर ले आता है। इसमे नारी भी बड़ी प्रसन्न रहती है और प्रसन्न नारी–प्रसन्न पत्नो को देख कर फिर पति भो फूला, नहीं समाता। आगे चल कर जब बच्चा उत्पन्न होता है तो फिर नारी–और नर–पति और पत्नी सहृदयतावश सोचते हैं कि बच्चे को क्या अच्छा लगता है और उसको क्या अनुकूल है ? कभी–कबाढ़ नारी पूछती है पति से कि–"पति देव ! आज क्या बनाऊँ ? " तो पति झट बोल देता है– "देवि! जो बच्चों को अच्छा लगे और जो उन्हें अनुकूल हो,तू वही बना।" तब पति-पत्नी सांमनस्य के कारण बच्चों के मन के अनुकूल ही सोचने–विचा–रने और करने लगते हैं। पति तब प्राय: वह लाता है जो बच्चों को प्रिय और अनुकूल होता है, नारी भी तब प्राय: वही सब कुछ बनाती है, जो बक्चों को प्रिय–रुचिकर और अनुकूल हो।यह सब देख कर बच्चे भी तब बड़े ही प्रसन्न रहते हैं- बड़े ही खुश रहते हैं।और खुश-प्रसन्न बच्चों को देखकर तब माँ-बाप भी फुले नहीं समाते। ऐसी स्थिति में बच्चों का प्रेम, आदर और मान-सम्मान का भाव आदि अपने माँ–बाप में बहुत बढ़ता है और माँ–बाप का लाड़–प्यार आदि अपने बच्चों में प्रगाढ़ होता जाता है। इससे तब घर परिवार सब सदा हरा–भरा बना रहता है। मुझे याद है एक बार बस में एक व्यक्ति ने ४ सन्तरे लिये। एक बेटो एक बेटे और एक पत्नि को देकर एक स्वयं ले लिये। तीनों ने सन्तरा खा लिया तब बेटो माँ से बोली। " मांजी ! आप का बस में जी खराब होता है, इस लिये मैंने अपना सन्तरा रख लिया है।पता नहीं आगे मिले न मिले, तो आप मुझ से लेलेना।" माँ ने बेटी की अपने प्रति उस दिव्य भावना को

जब जाना, तो वह बड़ी ही प्रसन्न हुई और बोली कि- "न जाने मैं इस बेटी पर क्या वार दूँ । इस ८–९ वर्ष में इस की बड़ी ही सुन्दर भावनायें हैं।"

घर में अतिथि आया–अभ्यागत आया, तो मानो भगवान् आया । अब सहृदयतावशात् परिवार के सदस्यों में सांमनस्य उत्पन्न हुआ । इस लिये उसकी गर्मी वा सर्दी को परिवार वालों ने अपनी ही गर्मी–सर्दी समझा । तभी उन्हों ने उसे अपनी ही सर्दी–गर्मी समझ कर उसे दूर करने के लिये उसे गर्म–ठण्डा जल दिया । फिर उसकी भूख–प्यास को सहृदयता वश अपनी ही भूख–प्यास मान कर–समझ कर–अनुभव करके उन्हों ने उस भूख प्यास को मिटाने के लिये उसे कुछ खाने-पीने को दिया । फिर उसकी थकान को सहृदयतावश अपनी ही थकान मान कर उसको विश्राम के लिये अच्छा से अच्छा स्थान दिया, अच्छे से अच्छे वस्त्राच्छादन दिये ।

सच कहा जाये तो जिस घर में–जिस समाज में सहृदयता होती है, वहाँ सम्मनस्कता भी जरूर होती है । और जहाँ ये दोनों विद्यमान रहती हैं, वहाँ फिर कोई वैर-विरोध नहीं होता, वरन् वहां तो एक व्यक्ति किसी चीज वा कार्य का प्रस्ताव रखता है तो दूसरे सब सहृदयता वशात् उस पर फूल चढ़ाते हैं । अर्थात् सब उसका अनुमोदन करते हैं और फिर सभी एक मन से उस कार्य को सम्पन्न करने में लग जाते हैं । और जब तक फिर उस कार्य को सिद्ध नहीं कर लेते तब तक सब एक मन होकर उस में जुटे रहते हैं । जब सब प्रेम पूर्वक लग जाते हैं, तब उस कार्य की सिद्धि भी सहज हो ही

जाती है।कार्य सिद्ध होने पर फिर सब फूले नहीं समाते।वेद भगवान् यही चाहता है कि हर घर–परिवार वा समाज में ऐसी ही सहृद–यता और ऐसा ही प्रेम बना रहे । हमें चाहिये कि मन–वचन और कर्म से हम सब इसके अनुकूल आचरण करते हुए अपने घर–परिवार एवं समाज को सुखमय स्वर्गमय आनन्दमय बनाएें।

—o—

द्वितीय रश्मि :

"अविद्वेषं कृणोमि व : "

" मैं तुम्हें द्वेषरहित करता हूँ " (अथर्व० ३.३०.१)

संक्षिप्त अन्वयार्थ—[अहम्] (अविद्वेषं कृणोमि वः) मैं तुम्हें द्वेषरहित करता हूँ।

अन्वयार्थ – हे मनुष्यो ! मैं तुम सबको द्वेषरहित करता हूँ वा करना चाहता हूँ।

व्याख्या :—परम पिता परमेश्वर घर परिवार में,सभा–समाज में, ग्राम–नगर वा देश में रहने वाले हम सब मनुष्यों को द्वेषरहित करना चाहता है, अप्रीतिरहित करना चाहता है। अर्थात् घर गृहस्थ में, समाज वा राष्ट्रादि में रहते हुए हमारे भीतर जो दूसरों को देखकर, दूसरों को सुनकर, दूसरों के ज्ञान, धन, यश, मान–सम्मान को देख–सुनकर खुश न होने–प्रसन्न न होने–तृप्त न होने के जो संस्कार हैं, विचार हैं, व्यवहार हैं, उन्हें प्रभु हमारे भीतर से बाहर निकालना चाहता है। इतना ही नहीं हमारे भीतर जो दूसरों के प्रति द्वेष ही नहीं वरन् जो विद्वेष के–विशेष द्वेष के–अत्यन्त द्वेष के–अत्यन्त अप्रीति के–अत्यन्त घृणा के भाव हैं, जो कि हमें कभी दूसरों को देख-सुन कर प्रसन्न नहीं होने देते, जो कि हमें किसी के धन-वैभव, सुख–सौभाग्य, मान–सम्मान, यश–कीर्ति, उन्नति-समुन्नति आदि आदि पर तृप्त नहीं होने देते,गुलाब के फूल के समान खिलने नहीं देते, न ही हर्ष-खुशी मनाने देते हैं। ऐसे अत्यन्त विद्वेष के–अत्यन्त अप्रीति के भावों को प्रभु

हमारे भीतर से निकाल बाहर करना चाहता है। गृहणी की मार्जनो–झाड़ू के समान इस अत्यन्त अप्रीति वा घृणा के भावों को कूड़े–कचरे के समान बाहर कर वह हमारे मन–मन्दिर को साफ–सुथरा कर उसमें फिर अत्यन्त प्रीति के ऐसे भावों को भरना चाहता है कि जिस के परिणामस्वरूप फिर हम केवल परिवार के ही नहीं वरन् सब संसार के मनुष्य एक दूसरे को देखकर तृप्त होंगे, एक दूसरे के धन–वैभव को देखकर भी तृप्त होंगे, एक दूसरे के मान-सम्मान को देखकर भी तृप्त होंगे, एक दूसरे की कीर्ति–यश को देखकर भी तृप्त होंगे, एक दूसरे की उन्नति–समुन्नति को निहार कर भी प्रसन्न होंगे,एक दूसरे की पद-प्रतिष्ठा को देखकर भी गद्गद् होंगे।

वह प्रभु इन मनुष्यों को द्वेष से–विद्वेष से अर्थात् अप्रीति से–अत्यन्त अप्रीति से क्यों दूर करना चाहता है, इसलिये कि प्रभु जानता है कि जिस में द्वेष–विद्वेष वर्तमान रहेगा, दूसरों के प्रति अप्रीति और अत्यन्त अप्रीति रहेगी तो फिर उस व्यक्ति को किसी की अच्छी से अच्छी वृत्ति, किसी की पवित्र से पवित्र दृष्टि, और उसके आधार पर उसकी होने वाली, पवित्र से पवित्र कृतियों में भो दोष दीखेंगे-कमियां दीखेंगी,त्रुटियां दीखेंगी, उसके निःस्वार्थ व्यवहारों में भी स्वार्थ दीखेंगे-छल कपट दीखेंगे इत्यादि।और उसके परिणाम स्वरूप उसकी फिर उन व्यक्तियों से घृणा हो जायेगी, नफरत हो जायेगी। फिर इतना ही नहीं वरन् उससे फिर उनकी निन्दा भी होगी, उनकी बुराई भी होगी, उनकी चुगली भी होगी, उनकी जगह जगह बदनामी भी होगी,

उनकी हानि (नुकसान) भी होगी, उनकी हिंसा भी होगी, उससे उनके प्रति दुरित भी होंगे, उनके अपमान भी होंगे, उनके तिरस्कार भी होंगे। इसलिये वह प्रभु हमें इस द्वेष से इस विद्वेष से रहित करना चाहता है। साम वेद ४२६ मन्त्र में कहा है—

न तमँहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।
सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयति वरुणो अतिद्विषः ।

साम० ४२६ ॥

(देवासः ! यम् अर्यमा मित्रः वरुणः द्विषः अति नयति, तं मर्त्यं न अंहः , न दुरितं अष्ट) हे देवो ! हे विद्वानो ! हे ज्ञानियो ! जिस मनुष्य को न्यायकारी मित्रस्वरूप वरणीय प्रभु द्वेष से तार देता है, उस मनुष्यो को न कोई अँहस, अर्थात् पाप और न ही कोई दुरित अभिव्याप्त कर सकता है– अभिभूत कर सकता है। इससे यह ज्ञात हुआ कि जिस मनुष्य के हृदय में किसी के प्रति द्वेष होता है–अप्रीति होती है–घृणा होती है–नफरत होती है, उसी के हाथों से ही अगलों के प्रति अंहस होता है–अगलों के प्रति पाप होता है–अगलों के प्रति अपराध होता है–अगलों के प्रति हिंसा होती है। और इसी द्वेष ही के कारण ही मनुष्य से दूसरों के प्रति दुरित होता है, दूसरों के प्रति दुर्भावना होती है, दूसरों के प्रति दुर्व्यवहार होता है,दूसरों के प्रति बुरे से बुरा, कटु से कटु व्यवहार होता है।

अब जिस द्वेष–अप्रीति–घृणा–शत्रुता के कारण मनुष्य के द्वारा दूसरों के प्रति अंहस होते हैं दुरित होते हैं, उस द्वेष विद्वेष को प्रभु हमारे भीतर से निकालना चाहता है, ताकि

लिये निकालना चाहता है ताकि हममें प्रीति पनप सके। इस प्रकार हमारे हृदय में दूसरों के प्रति जब प्रीति पनप जायेगी और फिर सब में प्रभु को बसा हुआ समझकर भी जब हम उन सब के प्रति प्रीति रखेंगे, तो उसके परिणामस्वरूप हम जिसको देखेंगे, जिसको सुनेंगे, उसके प्रति हमारे हृदय में प्रीति उमड़ेगी। प्रीतिवशात् उनके फिर उन्नत कार्यों को देखकर हममें उसका सही मूल्यांकन करने की वृत्ति होगी। उनके गुण फिर हमें गुण ही अनुभव होंगे, उनके उत्तम कार्य भी हमें फिर उत्तम कार्य ही दीखेंगे।उनके पद और उनकी प्रतिष्ठा को देखकर हम सब तब प्रसन्न होंगे,उनके मान-सम्मान को देखकर तब हम फूले नहीं समायेंगे। फिर हमारे द्वारा उनके प्रति अंहस नहीं होंगे, पाप नहीं होंगे--अपराध नहीं होंगे, दुरित नहीं होंगे-दुश्चिन्तन नहीं होंगे, दुर्भावनाएं नहीं होंगी, दुर्व्यवहार नहीं होंगे, बल्कि फिर जिनके साथ भी हम मिलेंगे, बड़े प्यार से मिलेंगे, जिनसे बात करेंगे, बड़े प्यार से करेंगे, जिनकी बात सुनेंगे बड़े प्यार से सुनेंगे, जिनकी ओर देखेंगे, बड़े प्यार से और पवित्र भाव से देखेंगे, जिस के साथ जो भी हमारा व्यवहार होगा, वह बड़ा मिठासपूर्ण ही होगा, बड़ा सोहार्द पूर्ण ही होगा, बड़ा हृदयावर्जक व्यवहार ही होगा। फिर हमारे उस व्यवहार में स्नेह होगा, प्यार होगा, स्नेह-सहानुभूति होगी, मान-सम्मान होगा। इससे फिर तब हम सबका जीवन बड़ा ही सुखमय व्यतीत होगा, बड़ा ही शान्तिमय व्यतीत होगा।

तृतीय रश्मिः

"अन्यो अन्यमभिहर्यत"

एक दूसरे की ओर स्नेह से बढ़ो" [अथर्व० ३ ३०.१]

अन्वय:—हे मनुष्यो ! तुम (अन्य: अन्यम् अभिहर्यत) एक दूसरे को प्यार से मिलो-तुम एक दूसरे के प्रति प्यार से बढो तुम एक दूसरे के प्रति स्नेह एवं उत्साह से गति करो।

अन्वयार्थ—तुम सब परस्पर (अन्य:अन्यम् अभिहर्यत) एक दूसरे के प्रति स्नेह से गति करो।

व्याख्या:—हे मनुष्यो ! तुम सब में से प्रत्येक का यह कर्त्तव्य है कि वह जो दूसरे के प्रति गति करे, व्यवहार करे, वह ज्ञान पूर्वक करे. वह बुद्धि पूर्वक करे, वह पवित्रता पूर्वक करे, वह प्रसन्नवदन होकर करे, वह प्यार पूर्वक करे। वह दूसरे के प्रति जो बात करे, दूसरे के प्रति जो आगे बढ़े, दूसरे के प्रति जो दृष्टि उठाए, दूसरे की बात पर जो ध्यान दे, दूसरे से जब स्नेह करे, वह सब ज्ञान पूर्वक करे। ज्ञान पूर्वक कैसे–जैसे कि यह "मेरी मां है वा माता के तुल्य है, यह मेरी बहिन है वा बहिन के तुल्य है, यह मेरी बेटी है वा बेटी के तुल्य है, यह मेरी पत्नी है, या मेरी पत्नी के समान किसी की धर्म पत्नी है-किसी को अनुव्रता पत्नी है,यह मेरा भ्राता है या भ्राता तुल्य है, यह मेरा पुत्र है वा पुत्रवत है, यह मेरा पिता है वा पिता के तुल्य है, यह मेरा पड़ोसी है वा मेरे पड़ोसी जैसा

है. यह मेरे ग्राम का, नगर का, मेरे जनपद का, मेरे प्रान्त का, मेरे देश का, वा मेरे पड़ोसी देश का वा मेरे (समान एक मानव है वा मेरे) समान एक प्राणी है । मेरी तरह इनकी भी आत्मा है, हृदय है, मन है, बुद्धि है । मेरी तरह इनको भी कड़वा बोल बुरा लगता है, मेरी तरह इनको भी गाली–गलोज बुरा लगता है. मेरी तरह इनको भी अपने प्रति किया हुआ क्रोध बुरा लगता है,मेरी तरह इनको भी कोई क्रोधभरी दृष्टि से निहारे, घृणा की दृष्टि से देखे अपमान की दृष्टि से देखे, तिरस्कार के नेत्रों से निहारे, ईर्ष्या और द्वेष की दृष्टि से देखे, तो इनको भी कष्ट होता है, इनको भी दुःख होता है । मेरी तरह इनके प्रति भी कोई अपवित्र भावना करे, इनकी मां बेटी और बहिन को अपवित्र दृष्टि से देखे, इनके साथ बलात्कार करे, तो इन्हें पीड़ा होती है, इन्हें कष्ट होता है, इनके दिल में आग लगती है । मेरी तरह इनको भी अपना धन प्यारा है, अपना न्न आदि खाद्य पदार्थ प्यारा है, अपनी जमीन–जायदाद प्यारी है । अतः मेरी तरह इनसे भी उसे कोई छीने, झपटे, चुराए, लूटे वा लेकर भाग जाए, तो इन को भी बुरा लगता है, ये भी दुःखी होते हैं, मेरी तरह ये सब भी अपने उस धन–अन्न आदि की रक्षा –सुरक्षा के लिये लगातार दौड़–धूप करते हैं । मेरी तरह इनके भी बच्चे हैं, माताएं हैं, बेटियाँ हैं, बहिनें हैं, पोते–दोहते हैं । अतः इन्हें कोई मारे-पीटे, वा हानि पहुँचाए तो इनका भी जी दुःखता है,इनको भी दूसरे के ऐसा करने पर क्रोध आता है,अतः ये भी मुझे मार सकते हैं दुःख दे सकते हैं,हानि पहुँचा सकते हैं। अतःमुझे वा हमे चाहिऐ कि हम इनके प्रति हिंसा का व्यवहार न करें,इन्हें

मारें नहीं,इनके प्रति क्रोध न करें, इनको बुरी दृष्टि से न देखें,इनका अपमान न करें, इनका तिरस्कार न करें, इनके प्रति द्वेष न करें,इन प्रतिईर्ष्या न करें,इनसे घृणा न करें,इनसे नफ़रत न करें,इनको दुःख न दें, इनको कष्ट न दें, इनके प्रति अभद्र व्यवहार न करें, इनके साथ बुरा बर्ताव न करें ।

हमें चाहिए कि वेद के सदुपदेश के अनुसार (पुमान् पुमांस परिपातु विश्वतः)हम में से प्रत्येक मनुष्य दूसरे मनुष्य की चहुं ओर से रक्षा करे । जैसे हमें अपनी जान प्यारी है वैसे हमें दूसरों की भी जान प्यारी लगनी चाहिये,जैसे हमें अपनी मां बेटी वा बहिन प्यारी हैं, जैसे हमें उनकी सुख-सुविधा और इज्जत प्यारी है, वैसे ही दूसरों की मां बेटी बहन और उनकी सुख-सुविधाएं तथा उनकी इज्जत भी तो हमें प्यारी होनी चाहिये।अतःहमें चाहिये कि हम में से प्रत्येक, जो दूसरों के प्रति आगे बढ़े, दूसरों के प्रति गति करे, वह ज्ञान पूर्वक करे स्नेह सहानुभूति पूर्वक करे, वह दूसरों से बोले तो प्यार से बोले, उन्हें देखे, तो स्नेह से देखे, उनसे बर्ते तो निश्छल होकर बर्ते, उनके प्रति सोचे तो पवित्र हृदय से सोचे, उन्हें खिलाए, पिलाए, उनसे मिले जुले तो प्यार से मिले, उन्हें निहारे तो प्यार और पवित्रता से निहारे । इससे क्या होगा ? उनकी आत्मा तृप्त होगी, उनका हृदय पुण्डरीक-हृदय कमल खिल जायेगा । फिर क्या होगा, मैं भी उनको अपने भाई के तुल्य भाई दीखने लगूंगा,उनको अपने पिता के तुल्य पिता प्रतीत होने लगूंगा,उनको अपने पुत्रतुल्य अपना पुत्र प्रतीत होने लगूंगा, फिर उनके हृदयों से मेरे प्रति भी सहृदयता पूर्ण व्यवहार होने लगेंगे, उनके दिल मेरे प्रति हरे-भरे होने लगेंगे, फिर उनकी

आखें स्नेह और स्नेहपूर्ण हृदय से मेरी बाट जोहती रहेंगी, उनकी आँखे फिर हमें देखना चाहेंगी, और हमें देखकर तृप्त होना चाहेंगी, उनके कान मुझे सुनना चाहेंगे, उनके पैर उनको मेरी ओर प्यार से आगे बढ़ने को प्रेरित करते रहेंगे, उनके हाथ तब मेरी सेवा–शुश्रूषा, मेरी आव-भगत करने में तत्पर होना चाहेंगे, उनके हाथ तब हृदय के अनुसार मेरे सम्मुख जुड़ना चाहेंगे, सिर झुकना चाहेगा, हृदय देखकर प्रेम में विभोर होना चाहेगा। इस प्रकार वेद के आदेशानुसार फिर एक दूसरे के प्रति जो गति होगी, जो व्यवहार होगा, वह सब ज्ञान पूर्वक होगा,प्रेम पूर्वक होगा। और वह व्यवहार ऐसा होगा कि फिर हमें एक दूसरे के प्रति गद्‌गद् कर देगा,वह व्यवहारतब ऐसे प्यार पूर्वक, निश्छलता पूर्वक, निःस्वार्थ पूर्वक होगा जैसा कि गौ का नवजात बछड़े के प्रति होता है, जैसा कि वेद में आदेश, उपदेश, निर्देष और सन्देश है।

—●—

चतुर्थ रश्मिः

अनुव्रतः पितुः पुत्रः ॥ अथर्व० ३. ३०.२ ॥

अन्वयार्थ :– [पुत्रः पितुः अनुव्रतः (भवतु)] पुत्र पिता का अनुव्रती हो।

पुत्र को चाहिए कि वह अपने जन्मदाता एवं पालन-पोषण कर्ता पिता के अनुकूल व्रत करने वाला हो–अनुकूल कर्म करने वाला हो।

व्याख्या—पुत्र का कर्तव्य है कि वह पिता के अनुकूल व्रत करे-बेटे को चाहिए कि वह अपने पिता की आज्ञा के अनुकूल कार्य करें, बेटे को चाहिये कि वह अपने बाप के हुक्म के मुताबिक काम करे।

वास्तव में पुत्र तभी ऐसा कर सकेगा जबकि वह यह सोचे, वह यह समझे, वह यह विचारे, वह यह अनुभव करे कि–" यह मेरा पिता है और मैं इस का पुत्र हूँ। और पुत्र होने के नाते मुझे ऐसा लगता है कि जब मेरा जन्म हुआ होगा तो अन्य सब पिताओं की तरह मेरे इस पूज्य पिता ने भी मेरे जन्म पर खूब प्रसन्नता अनुभव की होगी, खूब खुशियाँ मनाई होंगी, खूब लड्डु–पेड़े बांटे होंगे। इतना ही नहीं,इन्होंने बड़े प्यार से मेरा जातकर्म संस्कार करके स्वर्णशलाका को मधु और घृत में–शहद और घी में डुबो-डुबो कर मेरी जिह्वा पर बड़े लाड और प्यार से परमेश्वर का प्यारा मुख्य नाम 'ओ३म्' लिखा होगा। इसलिए कि मैं आस्तिक बनूँ, मैं ईश्वर-विश्वासी बनूँ, ईश्वर पर हृदय से निष्ठा रखता हुआ मैं

उसकी प्रतिदिन उपासना करूँ । मैं प्रतिदिन में भी प्रातः-सायं अर्थात् दोनों समय श्रद्धा-भक्ति और प्रेम से उसका भजन करूँ, पूजन करू। इसी पिता ने मेरी लम्बी आयु-उम्रकी कामना भी की होगी । मुझे रंग-रंगीले सुरभित पुष्पों-फूलों की मालायें भी पहनाई होंगी, सब बन्धु-बान्धवों और सामाजिक सज्जनों के साथ मिलकर मुझे दीर्घायु का आशीर्वाद देकर मुझ पर फूल भी बरसाये होंगे, मुझ पर जी भरकर पुष्पों की खूब वर्षा भी की होगी। नहीं नहीं, इतना ही नहीं कि वे केवल मेरी लम्बी आयु की कामना, प्रार्थना आदि करके ही आराम से बैठ गए होंगे, वरन् उन्होंने तदनुसार जी-जान से परिश्रम कर-कर के एडियाँ घिस-घिस कर के मुझे हर दृष्टि से स्वस्थ, समर्थ-सशक्त और योग्य-सुयोग्य, सम्पन्न-सुसम्पन्न बनाने का हार्दिक प्रयास भी किया होगा। उन्होंने पुनः मेरा नामकरण, अन्न-प्राशन, कर्णभेद, मुण्डन, उपनयन, वेदारम्भ संस्कार आदि भी बड़े उत्साह, बड़ी उमँग से किया होगा। यह सब कुछ उन्होंने इसलिये किया होगा कि मैं उनके अरमानों की कभी सच्ची तस्वीर बन सकूँ-उनकी अभिलाषाओं की कभी साक्षात् मूर्ति बन सकूं, मेरा उनके हार्दिक उत्तम सङ्कल्पों के अनुसार कभी एक आदर्श चित्र तैयार हो सके। तात्पर्य यह है कि कभी मैं ऐसा महान् बन सकूँ कि जिस से मेरे पूज्य पिता जी को देख-देख कर वा सुन-सुन कर तृप्ति मिल सके प्रसन्नता अनुभव हो सके, यह सब कुछ इसलिये भी वह करता है कि मैं कभी उनका अनुव्रती बन सकूँ, उनका आज्ञाकारी बन सकूँ, उनकी भावनाओ के अनुरूप, उनके उत्तम व्रतों-कर्मों के अनुसार

एक सच्चा पुत्र बन सकूँ, एक अच्छा पुत्र बन सकूं, ताकि उन को मुझ पर गर्व हो।

पिता होने के नाते वे मुझे अपना पुत्र समझ कर मुझ से यह भी आशा करते हैं कि पुत्र होकर मैं आने वाले समय में उनको पुत्-नरक से तार सकूँ। अर्थात् मैं जब सब प्रकार से समर्थ हो जाऊँ और वे जब असमर्थ हो जाएं- वे जब अशक्त हो जाएं, वे जब रुग्ण हो जाएं वा वे जब वृद्ध हो जाएं,तो मैं नरक से, कष्ट से,आपत्ति से-विपत्ति से उन्हें तार सकूं –उभार सकूँ, रोग से बचा सकूँ।

जिस पिता ने मेरी जिह्वा पर बड़े प्रेम से प्रभु का "ओ३म्" नाम लिखा था, वह सम्भवत: यह सोचकर लिखा था कि—"बेटा सब कुछ भूल जाना, पर जिस महान् परम पिता परमेश्वर का नाम मैं तेरी जिह्वा पर लिख रहा हूँ, उसको तू कभी न भूलना, उस के प्रति तु सदा कृतज्ञ होकर उस का भक्ति भरे भावों में विभोर होकर गुण–गान करना, उसका मनन करना, जाप करना, उसका एकाग्रभाव से सदा ध्यान करना।" अब देखने की बात यह है कि क्या मैं उस प्यारे और सब जग से न्यारे परम पिता परमेश्वर का प्रतिदिन, प्रतिदिन में भी प्रति प्रभात और प्रति सायं कृतज्ञता पूर्वक श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से स्मरण करता हूं या नहीं? उसको सदा सर्वत्र विराजमान समझ कर उसकी कृतज्ञ भाव से ओत–प्रोत हुआ हुआ स्तुति, प्रार्थना और उपासना करता हूँ या नहीं? यदि नहीं, तो अपने जीवन के बीते हुए दिनों पर प्रायश्चित करते हुए भविष्य में मुझे सच्चा आस्तिक बनाने का

हार्दिक प्रयास करना चाहिए। अब जब मैं ने प्यारे और सब दुनियाँ से न्यारे प्रभु के प्रति कृतज्ञ रहना है, तो फिर भला मैं अपने उस पूज्य पिता के प्रति कब कृतघ्न रह सकता हूँ ? जिन्होंने कि मेरे सभी संस्कार करके मुझे हर दृष्टि से संस्कृत–सुसंकृत, स्वस्थ–समर्थ, विद्या–सुशिक्षा से सुयोग्य और उत्तम बनाने का हार्दिक प्रयास किया है, जिन्होंने कि मेरा जी-जान से पालन-पोषण किया है, जिन्होंने कि स्वयं फटा पुराना कपड़ा पहना और मुझे नये से नया और सुन्दर से सुन्दर कपड़ा पहनाया है, जिन्होंने कि स्वयं प्रायः रूखा–सूखा और बासी खाया–पीया, और मुझे तरो–ताजा खिलाया–पिलाया है, इत्यादि। अब मैं हार्दिक प्रयास करूँगा कि मैं अपने ऐसे पूज्य पिता को नित्यप्रति कृतज्ञ भावना से आप्लावित हुआ–हुआ श्रद्धा, प्रेम से प्रणाम करूँ, नित्य प्रति उनकी आज्ञाओं का पालन करूँ, नित्य प्रति उनके जीवन के जो व्रत हैं, जो श्रेष्ठ कार्य हैं, जो उत्तम–उत्तम गुण कर्म स्वभाव हैं, उनके अनुरूप आचरण करूँ। पुत्र कहला कर मैं सदा जी-जान से उनकी परिचर्या करूँ। भविष्य में जब वे वृद्ध हो जायें, तो मैं उनका भली–भाँति पालन–पोषण करूँ। यदि वे रुग्ण हो जायें तो मैं उनको अच्छे से अच्छे वैद्य–हकीम और डाक्टर से चिकित्सा कराऊँ, मैं उनके औषधोपचार की पूर्ण व्यवस्था करूँ। और यह सब कुछ मैं उनके कष्ट-क्लेशों-आपत्तियों को दूर कर उनको सुदीर्घ काल तक स्वस्थ–सशक्त और सुप्रसन्न बनाए रखने का प्रयास करूँ, ताकि सुदीर्घ काल तक उनका वरद हस्त मेरे सिर पर बना रहे

और उनका रोम–रोम से निकलने वाला प्यार और आशी–र्वाद भी मुझे सतत मिलता रहे।
यदि यह सब कुछ मैं करता रहूँगा तो सचमुच वेदोपदेश के अनुसार मैं अपने पूज्य पिता का अनुव्रती पुत्र, आज्ञाकारी पुत्र, सच्चा पुत्र कहला सकूँगा।

★*★

पंचम रश्मि:

[पुत्रः] मात्रा भवतु सम्मनः ।। अथर्ववेद ३-३०-२,,

अन्वयार्थः-[पुत्र माता से एकमन वाला हो, पुत्र माता के समान मन वाला हो ।

पुत्र को चाहिए कि वह अपनी माँ के समान मन वाला होवे, वह अपनी मां के साथ एकमन वाला होवे ।

वास्तव में पुत्र तभी ऐसा बन सकता है जबकि वह अपनी माँ का सही मूल्यांङ्कन करे। सही मूल्याँङ्कन भी वह अपनी माँ का तब कर सकता है जबकि वह यह विचार करे, जबकि वह यह सोचे-समझे "कि यह मेरी वह माँ है जिसने मुझे जन्म दिया है, जन्म भी यों ही नहीं दिया, वरन् बड़े तप से दिया है। ६ मास इसने मुझे अपने गर्भ में रखा। गर्भावस्था में इसके सतत रक्तप्रदान करने आदि से ही मैं भीतर ही भीतर पलता पुस्ता रहा। ज्यों-ज्यों भीतर से मैं बढ़ता रहा, त्यों-त्यों यह मेरी माँ प्रसन्न होती रही। भीतर मेरे वर्तमान रहते हुए यह मेरी माँ निरन्तर वह खाती रही, वह पीती रही, जिससे मुझे किसी प्रकार की हानि न हो, मुझे किसी प्रकार का कष्ट न हो। यह वह सब पढ़ती रही, वह सब सुनती रही जिससे कि मेरे संस्कार उत्तम बन सकें, और मेरा आने वाला जीवन उत्तम बन सके। यह यदि कभी राह पर चलती रही वा किसी पगडण्डी पर अपना पग बढ़ाती रही, तो यह ऐसे सम्भल-सम्भल कर चलती रही, ऐसे सम्भल-सम्भल कर अपना

पग बढ़ाती रही कि जिससे कहीं भीतर से मुझे किसी प्रकार की हानि न हो। फिर प्रसव पीड़ा आदि सब कुछ सहन करके जब इसे यह ज्ञात हुआ कि मेरा जन्म हुआ है, तो सन्तानोत्पत्ति की ध्वनि कानों में पड़ते ही यह तब इतनी प्रसन्न हो गई कि उस प्रसन्नता में यह अपने सब कष्टों को ही भूल गई। पुत्रोत्पत्ति के उपरान्त अपने सब कष्टों को भूली हुई-हुई यह मेरी माँ मन ही मन मेरे बारे में बड़े सुन्दर–सुन्दर स्वप्न लेने लगी, बड़ी ही उत्तमोत्तम भावनाओं में बहने लगी, और यों सोचने विचारने लगी कि—" ११ वें दिन जब मेरे इस प्यारे पुत्र का नामकरण संस्कार होगा तो मैं इसका यह नाम रखूंगी, मैं इसका वह नाम रखूँगी, नहीं नहीं, मैं अकेली नहीं वरन् अपने सास-ससुर से सलाह लेकर, जिठानो–दिरानी (= देवरानी) और ननन्द आदि से विचार–विमर्श करके ही इसका नाम रखूंगी। नहीं नहीं मेरे इस प्यारे पुत्र में मेरे इस प्राणप्रिय पति के भी अनेकों अरमान होंगे अतः मैं उन से भी सलाह-पशवरा करके इस बच्चे का ऐसा सुन्दर नाम रखूँगी, जैसा कि किसी दूसरे का कभी हुआ ही न हो। इस शुभ अवसर पर मैं अमुक विद्वान् को बुलाकर उसी से इसका नामकरण संस्कार कराऊंगी, इस शुभ अवसर पर मैं इन बन्धु–बान्धवों को बड़े प्यार और बड़ी श्रद्धा से बुलाऊंगी। सब बन्धु–बान्धवों के साथ–साथ सभी सामाजिक महानुभावों से भी मैं इस बालक को आशीर्वाद दिलाऊंगी। मैं अपनी कुलपरम्पराओं के अनूकूल ही अपनो और अपने पति की उत्तमोत्तम भावनाओं के अनुरूप

ही इस बालक को बहुत अच्छा विद्वान् बनाऊंगी, बहुत बड़ा डाक्टर, इन्जीनियर वा वहुत बड़ा धनी–मानी बनाऊंगी। बहुत बड़ा दानी, धर्मात्मा और पुण्यात्मा बनाऊँगी। मैं इसको मधुर, प्रिय बोलना सिखाऊंगी, मैं इस को शरीर से स्वस्थ–सुन्दर बनाऊँगी। मेरे वस्त्र चाहे कैसे भी घटिया से घटिया क्यों न हो जाएं, पर इसको मैं बढ़िया से बढ़िया वस्त्र पहनाऊंगी, मैं स्वयं चाहे खाऊं या न खाऊँ पर इसको तो मैं बढ़िया से बढ़िया खिलाऊंगी, बढ़िया से बढ़िया दुग्ध रस आदि पिला–ऊंगी। मैं इसका अन्नप्राशन,कर्णभेद मुण्डन,उपनयन आदि संस्कार कराऊंगो। मैं उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाली सुयोग्य कन्या से इसका विवाह कराकर अपने घर को स्वर्ग सा बनाऊंगी। मेरा बेटा प्रभु की अपार कृपा से और मेरे जी–जान से किए गए पुरुषार्थ से इतना अच्छा बनेगा कि वह मेरी और अपने पूज्य पिता आदि की जी–जान से सेवा-शुश्रुषा करेगा। मेरा बेटा आए–गए का मान-सम्मान करेगा, उनको हृदय से अभि–वादन करेगा, उनकी भी यह सेवा–शुश्रुषा करके यह अपने मां–बाप का नाम उज्जवल करेगा। यह बड़ा आस्तिक होगा। प्रभु का नित्य प्रति प्रातः सायं बड़ी श्रद्धा से गुण–गान किया करेगा, मेरे साथ बैठ–बैठ कर बड़े प्रेम से सन्ध्या–हवन किया करेगा। स्कूल कालेज में यह सदा अपने गुरुओं का मान–सम्मान कर उनको कृपा से बड़ा ही शिष्ट एवं सुयोग्य बनेगा। यह जब मुझे माँ कहकर प्यार से पुकारेगा तो तब मैं फूली नहीं समाऊंगी। यह जब प्यार से बनाए हुए मेरे भोजन आदि को खायेगा तो मैं बड़ी ही तृप्त होऊंगी। यह जब कार्य

करके अपने प्रथम मास की कमाई लाकर मुझे देगा, तो उस दिन मैं प्रभु का बहुत-बहुत धन्यवाद करूंगी, और मैं तब फूली नहीं समाऊंगी। फिर मैं इसकी उस प्रथम आय को शुभ कर्मों में लगाऊंगी, दूसरे मास की इसकी आय से मैं बन्धु-बान्धवों को खिला-पिला कर रिझाउंगी, तब तृतीय मास की इसकी आय को मैं अपने घर-परिवार में व्यय करूँगी आदि आदि।

इस प्रकार जब मैं दिल से सोचूंगा-यह सब कुछ जब मैं मन से विचार करूंगा, मां के हृदय को पढ़-पढ़ कर जब मैं भीतर ही भीतर यह सब अनुभव करूंगा, तो तब मैं अपनी इस पूज्या माँ, अपनी इस अरमानों से भरी मां, अपनी इस न्यारी और सबसे प्यारी माँ के साथ समान मन वाला बन सकूँगा, अपनी इस उत्तम माँ के साथ एक मन वाला बन सकूंगा। समान मन वाला, एक मन वाला बना हुआ-हुआ तब मैं बड़ा ही शिष्ट, बड़ा ही प्यारा, बड़ा ही सौम्य, बड़ा ही आस्तिक, बड़ा ही दयालु, बड़ा ही विद्वान्, बड़ा ही सेवापरायण, पूज्य माँ को भावनाओं पर हृदय से फिदा होने वाला, उसके चरणों का नित्य स्पर्श कर-कर के उससे प्यार और आशीर्वाद पाकर अपने जीवन को धन्य-धन्य मानने वाला, अपनी अपेक्षा घर में माता-पिता को सदा श्रेय देने वाला, अपने भाई-बहिनों को आदर और प्यार देने वाला, उन सबके लिए बड़े से बड़ा त्याग-तप और बलिदान करने वाला बन सकूंगा। तब मैं स्वयं खा-खा कर नहीं, वरन् उन्हें खिला-खिला कर खुश होऊंगा, तब मैं उन सब से सेवा करा-करा कर नहीं, वरन् घर में सबकी सेवा

कर कर के-शुश्रुषा कर-कर के अपने को निहाल समझूँगा। यह सब कुछ देख-सुन कर मेरी मां गद्गद होगी, प्रसन्न और तृप्त होगी, मुझे हृदय से लगा-लगा कर प्यारे प्रभु का धन्यवाद भी करेगी और मन ही मन फूली भी नहीं समायेगी। यह सब वह इसलिए करेगी कि मैं उनको भावनाओं की एक साक्षात् मूर्ति होऊँगा, उनकी हृदय की भावनाओं से तरंगित होने वाला, उनकी ऊँची अभिलाषाओं के अनुसार नाचने वाला एक प्यारा पुत्र बन जाऊँगा। यह सब होने पर ही वेद का उपर्युक्त वाक्य ([पुत्रः]मात्रा भवतु सम्मनाः) पुत्र माता से एक मन वाला हो, सार्थक होगा। और तब मेरी माँ 'पुत्' नाम उस नरक से तर जायेगी जिस में कि उस का पुत्र बिगड़ जाता है और माँ उस समय उसकी करतूतों को देख-देख कर और सुन-सुन कर कलपती रहती है। तब मैं अपनी माँ से एक मन वाला हुआ-हुआ, माँ के समान मन वाला हुआ हुआ अपनी उस प्यारी मां को देख-देख कर तृप्त होता रहूँगा और वह मुझे निहार-निहार कर गद्गद होती रहेगी। तब माँ मुझ जैसे पुत्र को पा कर प्रभु के प्रति कृतज्ञता से विभोर हुई-हुई उसके धन्यवाद के गीत गाती रहेगी और मैं अपनी ऐसी उत्तम माँ को पाकर कृतज्ञता से भरपूर हृदय से प्राणप्रिय प्रभु का धन्यवाद करता रहूँगा, यह विचार कर कि भगवान् ने मुझे ऐसी दिव्य माँ दी है। दिल्ली में एक माँ प्रतिदिन मन्दिर जाती थी। वहाँ उसको पंखे का अभाव दीखा, तो वह चुप-चाप घर आकर अपने छोटे पुत्र को कहती है, कि "बेटा मेरा मन करता है कि मैं एक पंखा वहीं लगवा दूं।" वह बेटा यद्यपि

अपने बड़े भाई की अपेक्षा बहुत निर्धन था, पर था वह बड़ा मातृभक्त और माँ के समान मन वाला-मां से एक मन वाला। अत: वह झट बोला "मां ! आज ही वह लग जाएगा" कल जब तू माँ, मन्दिर में जाएगी, तो पंखा तुझे वहां लगा हुआ मिलेगा। दूसरे दिन मां मन्दिर गई, तो वहां उसने पंखा देखा, तो वह बड़ी प्रसन्न हुई। पर घर आकर वह बेटे से बोली कि-"बेटा मैंने यह पंखा नहीं सोचा था, फला पंखा सोचा था।" इस पर पुत्र बोला– "मां जी! चिंता मत करो, कल आपको वही पंखा वहां लगा हुआ मिलेगा।" दूसरे दिन मां मन्दिर गई तो वह मन ही मन बेटे को आशीर्वाद देते हुए ऐसे अच्छे पुत्र के लिए प्रभु को धन्यवाद दिया, और घर आकर बेटे को बहुत प्यार किया और रोम-रोम से उसको आशीर्वाद दिया। मां जब वेदानुसार अपने पुत्र को अपने समान मन वाला, अपने साथ एक मन वाला देखती, सुनती है, तब वह कितनी प्रसन्न और खुश होती है, उसके हृदय से बच्चे के लिके क्या-क्या आशीर्वाद निकलता है, यह केवल वही जानती है। तभी वेद ने कहा है कि पुत्र को चाहिये कि वह माँ के साथ एक मन वाला हो।

षष्ठ रश्मि:

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम् ॥

अथर्व ३–३०–२ ॥

अन्वयार्थ: (जाया पत्ये मधुमतीं शान्तिवां वाचं वदतु) पत्नी पति के लिए मधुमयी शान्तियुक्त वाणी बोले ।

पत्नी को चाहिए कि वह पति से मधुमयी शान्तिमयी वाणी से ही बोले । और पति को भी चाहिये कि वह भी पत्नी से जब बोले तो मधुमयी शान्तिमयी वाणी से ही बोले ।

इस प्रकार जाया और पति अर्थात् पत्नी और पति जब परस्पर माधुर्ययुक्त शान्तिमयी वाणी बोलेंगे तो इस से उन की शक्ल और अक्ल दोनों सही सलामत बनी रहेंगी, उनकी आकृति और प्रकृति (=स्वभाव वा बुद्धि) ठीक–ठाक बनी रहेगी ।

नारी और नर—पत्नी और पति जब मन से यह सोच लेंगे–विचार लेंगे–निश्चय कर लेंगे कि उन्हें वेद के आदेशानुसार परस्पर मधुमयी वाणी ही बोलनी है। अर्थात् मधु-शहद के समान मीठी और दोष निवारक तथा चित्तरूपी भूमि पर सुख-शान्ति की वर्षा कर के उसको हरा-भरा करने वाली वाणी ही बोलनी है, तो फिर निःसन्देह उस के जो सुखद परिणाम होने चाहियें, वे अवश्य होंगे, तथा वे दोनों उन को देख–देख कर कृतकृत्य होंगे ।

ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त ८५ का ४४ वां मन्त्र है जिसमें नारी को उपदेश दिया गया है—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमना सुवर्चा।

वीरसूर्देवृकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥

हे नारि! सर्वरक्षक प्राणाधार दुःखविनाशक, सुखस्वरूप, सब सुखों के देने हारे उस परमपिता परमेश्वर की अनुकम्पा से तू पति की कभी भी हिंसा न करना। मुख से कड़वे बोल आदि,अन्य नाना प्रकारों से हिंसा करने की बात तो दूर रही,तू तो सदा अघोरचक्षु रहना, अर्थात् अपनी आंखों में भी क्रोध के कारण कभी लाली मत आने देना। इतना ही नहीं, तू तो इस से भी आगे बढ़कर सुमनाः— सुन्दर मन वाली, तेजोमयी, वीरों को जन्म देने वाली बन, देवरों को भ्रातृसम घर परिवार में विद्यमान रखना चाहने वाली बन। फिर मुझ ही नहीं मेरे भाई बहिनों को ही नहीं, मेरे माता पिता आदि को ही नहीं, वरन् मेरे घर में विद्यमान रहने वाले इन चोपाओं तक को भी अपने उत्तम शान्त मन से 'स्योना'–सुख देने वाली और शिवा–उन सब का सदा कल्याण करने वाली बन।

वेद के उपर्युक्त मन्त्र का यह उपदेश कितना सारगर्भित है कि वह 'अपतिघ्नी' हो-पति की कभी भी हिंसा न करने वाली हो— उस का कभी भी हनन न करने वाली हो। इसका केवल इतना ही अभिप्राय नहीं है कि वह केवल बाह्य दृष्टि से ही हनन–हिंसा न करने वाली हो, यहां तक कि उसका मन भी ऐसा अहिंसक हो जाए कि उसकी आंखों में भी फिर अपने पति एवं उस परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति क्रोध के कारण लाली न आने पाए। तभी तो उस को वेद में 'अघोर–चक्षु' कहा गया है। यदि सचमुच वह वेद के इस मन्त्रानुसार 'सुमना'—सुन्दर मन वाली बन जायेगी तो फिर आँखों में क्रोध के कारण लाली आने की तो बात पृथक् रही वहाँ से तो फिर उलटा स्नेह के स्रोत प्रवाहित होने लगेंगे। तब फिर वह केवल अपने पति के लिए ही नहीं वरन् उसके सब परिवार के

सदस्यों के प्रति भी स्योना सुखदायिनी बन जायेगी, शिवा-कल्याण-कारिणी बन जायेगी। तब वह सहज ही सूनृता बन जायेगी, अर्थात् सब के प्रति उसके मुख से फिर सत्य और मिठास से युक्त वाणी प्रवाहित होने लगेगी। इसी सहज स्वाभाविक दिव्य व्यवहार को प्रभु हरघर परिवार में देखना चाहता है। तभी तो वेद के द्वारा वह हमें यह उपदेश देता है कि—'पत्नी पति के प्रति जब भी बोले तो वह शान्तिमयी मधुरवाणी ही बोले। और ऐसा ही शान्त मधुर व्यवहार पति को भी पत्नी के प्रति सदा करते रहना चाहिए। वेद ने दम्पती को-जाया-पति' को यह आदेश-यह उपदेश क्यों दिया, इसलिए कि'पत्नी-पति' के इस व्यवहार का जहां उनकी आकृति और प्रकृति पर, उनकी शक्ल और अक्ल पर, उनके बाह्य व्यवहार और आन्तरिक स्वभाव पर, उन के मन और मस्तिष्क पर बहुत सुन्दर प्रभाव पड़ता है वहाँ इस का परिवार में आने-जाने वाले महानुभावों पर तथा विशेषकर आने वाली पीढ़ी पर-आने वाली सन्तति पर बड़ा ही उत्तम प्रभाव पड़ता है। नारी-नर के-जाया–पति के इस शान्तिमय मधुर प्रिय व्यवहार से जो घर–परिवार का Inviron-ment वातावरण बनाता है, वह बड़ा ही निराला होता है। बच्चे मूकरूप से इससे इतने प्रभावित रहते हैं कि उनके हृदय में सहज ही अपने 'जननी-जनक' अपने 'माता-पिता' के प्रति बड़ी श्रद्धा हो जाती है। जिस घर में ऐसा नहीं हो पाता, वहाँ का वातावरण बहुत ही खराब रहता है। जैसे कि एक परिवार में गृहपति रात को घर लेट आया। पत्नी ने उठकर भोजन तो उसके लिये परोस दिया, पर दाल सब्जी रोटी आदि सब कुछ ठण्डा ही था। पति ने कहा "यह भोजन तो बिल्कुल ठण्डा है, जरा गर्म

कर दो। पत्नी तो पहले से ही गुस्से में थी, क्योंकि पति देव आज बड़ी देर से आए। अत: क्रोध के कारण न तो अब वह स्योना-सुखदायिनी ही रह पायी, और न ही वह अब शिवा कल्याणकारिणी। इसलिए उसने उत्तर दिया, 'सुबह से बीस बार तो मैं चूल्हा जला चुकी, अब आप ही बताओ, ११ बजे हैं आप को तो अपनी गप्पों से ही फुरसत नहीं है। कब तक चूल्हे में मैं अपना सिर दिए रहूँगी यह सुनकर पति से भी अपनी त्रुटि को हृदय से अनुभव करते हुए भी धैर्य और शान्ति पूर्वक चुप-चाप नहीं रहा गया। अतः वह आग-बबूला होकर बोला कि—"आग लगे ऐसे भोजन को, सारा दिन मेहनत करते हैं, इतने पर भी यदि गर्म भोजन हमारे नसीब में नहीं है, तो क्या यह कुछ जीवन है !' यह लो अपनी रोटी, मैं होटल में चला जाता हूँ। अभी बारह-एक बजे तक तो वे खुले ही रहते हैं।" यह कहते हुए थाली को वह परे फेंक कर होटल की ओर चल दिया। नारी तो पहले से ही घोरचक्षु, अस्योना और अशिवा बनी हुई थी। अतः वह भी बोली—जहाँ आपकी मरजी हो, वहाँ भोजन खाओ, मुझे भी कोई सिर्फ यह भोजन बनाने का ही काम थोड़े है, और भी अनेकों मेरे काम हैं। सारा-सारा दिन यहीं मैं चूल्हा फूंकती रहूँ तो फिर और कार्य कौन करेगा, यह सब कहती हुई यह तो सो जाती है। और वह भी बाहर होटल में भोजन खाकर चुपचाप जला-भुना हुआ-२ सा अपनी खाट पर आकर सो जाता है। इन के इस व्यवहार का इनके घर-परिवार के वातावरण पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। ऐसी

ही एक बहन ने मुझे कहा कि- "भाई साहब । इस विकृत स्थिति को देखकर जब हमारा ही पुत्र हमें समझाने लगता है, और कभी–कभी जब हमें वह यहाँ तक कह देता है कि- "माता जी ! जब पिताजी नहीं मानते, तो आप ही मान जाएं, या हे पूज्य पिता जी ! यदि माता जी नहीं शान्त होती, तो आप ही कम से कम शान्त हो जाईये ।, तो ऐसे समय में भले ही हम गुस्से में हों,और गुस्से में आकर हम एक दूसरे से कुछ का कुछ कहे जा रहे हों, पर उस बेटे के सम्मुख भीतर ही भीतर हम अत्यन्त लज्जा का अनुभव कर रहे होते हैं इत्यादि ।"

इसके विपरीत एक दसरा घर है। उसमें भी गृह–स्वामी जब घर में लेट आता है, तो झट नारी उठकर उसको भोजन परोसती है। थोडा बहुत कुछ थाली में परोस कर शेष सब कुछ जब वह गर्म करने के लिए आग जलाती है, तो इतने में बच्चा जाग जाता है। वह रोने लगता है। वह झट बच्चे को गोद में ले लेती है और तवे पर गर्म करने के लिए रोटी, सब्जी आदि रखती है। उधर बच्चा बराबर रोता जाता है। उसके रोने से माँ ने ऐसा अनुभव किया जैसे कि उस बच्चे के पेट में दर्द हो। वह झट घी लेकर जहाँ एक हाथ से उस बच्चे के पेट को मलती है वहाँ दूसरे हाथ से वह रोटी-शाक आदि भी गर्म करती जाती है। तब तक पति को ठण्डी रोटी खाते हुए देखकर नारी कहती है– "पतिदेव ! मेरा बहुत बड़ा दुर्भाग्य है कि हृदय से न चाहते हुए भी मैं आपको ठण्डी दाल–रोटी खिला रही हूँ । यह सुनकर पति बोला– "देवी जी! तेरा दोष नहीं है, दोष तो मेरा ही है कि

मैंने व्यर्थ की गप्पों में इतना समय गवाँ दिया, और फिर ११ बजे के बाद ही मैं घर में आया। फिर भी धन्य हैं आप, जो इतनी ठण्ड में भी बिस्तर से उठकर मुझे बड़े स्नेह–सम्मान से भोजन करा रही हैं। फिर उधर बच्चे के पेट में दर्द है, अतः उसका पेट भी मल रही हैं। सचमुच यदि मैं ही समय पर आ जाता, और सब बच्चों के साथ ही मिल–जुल कर समय पर ही मैं भोजन कर लेता, तो फिर आप की भी नींद न खराब होती, और मैं भी समय पर सो कर प्रातः समय पर ही उठ जाता और अपने दैनिक सन्ध्या–हवन आदि से निवृत्त होकर समय पर ही अपने कार्य पर जा सकने में सहज समर्थ हो सकता। खैर, अब जो हो गया सो हो गया, आगे मैं पुनः ऐसी भूल करने से बचने का पूर्ण प्रयास करूंगा।

सचमुच जब जाया-पत्नी अपनी न्यूनता–कमी–त्रुटि को अनुभव करती हुई 'सुमना'होकर-'स्योना' होकर 'शिवा' कल्याण-कारिणी होकर जहाँ पति के प्रति शान्त एवं मधुमय वचन बोलती है, वहां वह फिर पति भी अपने ही भीतर झांक–झाँक कर अपनी ही न्यूनताओं को अनुभव करते हुए नारी के प्रति शान्त प्रिय, एवं मधुमय तथा सहानुभूति पूर्ण वचन ही बोलने लगता है। फिर इन दोनों के परस्पर इस शान्त मधुर एवं प्रिय तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार का जहाँ घर परिवार के वातावरण पर बड़ा ही उत्तम प्रभाव पड़ता है, वहाँ घर में आने-जाने वालों पर भी उसका बड़ा ही

अच्छा प्रभाव पड़ता है। यहाँ तक कि जिस नन्हें–मुन्ने बालक का पेट माँ मलती हुई पति की भोजन आदि द्वारा सेवा कर रही थी, उस पर भी उसका अनूठा प्रभाव पड़ता है। तभी तो वेद ने यह आदेश दिया है– यह उपदेश दिया है कि– "पत्नी पति के प्रति शान्तिमय मधुर वचन बोले और पति भी पत्नी के प्रति ऐसा ही मधुर प्रिय व्यवहार करे।

सप्तम रश्मिः

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् ॥ अथर्व ३–३०–३ ॥

अन्वयार्थः–(भ्राता भ्रातरं मा द्विक्षत् १) भाई भाई से द्वेष न करे–भाई भाई से अप्रीति न करे, शत्रुता न करे, वैर न करे, दुश्मनी न करे।

भाई को चाहिए कि वह भाई से द्वेष न करे–अप्रीति न करे, अर्थापति से यह निकला कि भाई को चाहिए कि वह अपने भाई से प्रीति करे। अर्थात् जब कभी भी वह अपने भाई से मिले तो वह तृप्त हो जाए, वह खुश हो जाए। वह अपने भाई को मिल कर ऐसे तृप्त हो जाए, ऐसे प्रसन्न हो जाए, ऐसे खुश हो जाए, जैसे कि गर्मियों में एक प्यासे व्यक्ति को शीतल जल मिल जाने पर वह तृप्त–प्रसन्न और खुश हो जाता है।

वेद ने यह उपदेश क्यों दिया? इसलिए कि–यदि एक भाई दूसरे भाई को मिले, और उसमें उसके प्रति द्वेष उमड़े–अप्रीति उत्पन्न हो। अर्थात् वह उसे देखकर तृप्त न हो, प्रसन्न न हो, खुश न हो, तो फिर भला उसको मिलने पर उसके प्रति उसमें कैसे उत्साह होगा, उसके प्रति उसके हृदय में कैसे प्यार उमड़ेगा, उसके प्रति उसके दिल में कैसे सहानुभूति उत्पन्न होगी और क्या ही वह फिर उसकी सेवा–सहायता कर पायेगा? पर अगर वेद के आदेशा–

---

१ द्विक्षत् – द्विष अप्रीतौ – धातु से बना है।

नुसार एक भाई दूसरे भाई से द्वेष न करे -अप्रीति न करे, अर्थात् प्रीति करे। कहने का अभिप्राय यह है कि एक भाई को जब दूसरा भाई मिले, तो उसके हृदय में उसके प्रति प्रीति उत्पन्न होनी चाहिए, उसे देखकर उस को तृप्ति मिलनी चाहिए, उसे देखकर उसके हृदय में उसके प्रति प्यार उमड़ना चाहिए, उसे देखकर उसको प्रसन्न होना चाहिए-खुश होना चाहिए ।

अब जिसे देखकर मनुष्य तृप्त होता है-प्रसन्न होता है-खुश होता है, तो बड़े भाई होने पर उसका मान-सम्मान करने में, उसको प्रणाम करने में, उसकी सेवा-शुश्रुषा करने में उसकी आव-भगत करने में, और अगर वह छोटा भाई हो, तो उसको लाड़-प्यार करने में, उसकी सेवा-सहायता करने में,उसको खिलाने-पिलाने में,उसको पढाने-लिखाने में, उसकी फीस-फास देने में मनुष्य में बड़ा ही उत्साह बना रहता है। तब मनुष्य सोचता है कि मेरा बड़ा भाई आया है "न जाने इस पूज्य भाई को मैं कहाँ बैठा दूँ, कहां घुमा दूँ,कौन से आसन पर बैठा दूँ, क्या खिला दूँ क्या पिला दूँ क्या पहना दूँ, क्या-२ ओढ़ा दूँ क्या दिखा दूँ, क्या सुना दूं, कहां घुमा-फिरा दूँ, कैसे सेवा-शुश्रुषा करके सिर आंखों पर इसे बैठा दूँ, और अगर वह छोटा है, तो उसको क्या-क्या पढ़ा-लिखा दूं, उसको क्या क्या दे, दिला दूँ, उसको लाड-प्यार से क्या-क्या खिला पिला दूँ, उसको क्या-क्या बना दूं, ? यदि वह रुग्ण हो अस्वस्थ हो वा कमजोर हो वा आर्थिक दृष्टि से हीन हो, तो तब मैं यह सोचता हूँ कि—"न जाने इसको किस बड़े से बड़े

डाक्टर-वैद्य हकीम को दिखाकर इसको औषध-दवा आदि लादूँ, ताकि मेरा यह पूज्य वा प्रिय भाई तुरन्त नीरोग हो जाए। न जाने कौन सा ऐसा टानिक इसे खिला-पिला दूँ कि जिससे जल्दी ही यह स्वस्थ हो जाए, सशक्त हो जाए, सबल हो जाए, अगर उसका भाई अच्छा-खासा पढ़ लिख गया होता है, तो फिर वह इसको कार्य व्यापार पर लगाने में जी-जान से प्रयत्न करता है, और अगर इसकी अच्छी खासी सर्विस लग जाती है वा किसी व्यापार के प्रारम्भ करने पर वह उसमें अच्छा-खासा सफल हो जाता है, तो फिर वह इस के लिए अच्छे कुल की, अच्छे गुण कर्म और स्वभाव वाली कन्या को खोज खाज कर खुशी-खुशी इसका विवाह करता है, ताकि इसका घर-परिवार बन जाए, और यह सुख सौभाग्य पूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सके। फिर वह इतना ही करके उसे यों ही नहीं छोड़ देता वरन् वह उस के घर-परिवार में आने वाली कठिनाईयों में भी जी-जान से उस भाई का सहयोग करता है। इसके भाई पर अगर कोई आर्थिक संकट आता है तो यह भाई दिल से उसको इस आर्थिक संकट से भी उभारता है, यदि उस पर कोई शारीरिक रोग वा कष्ट आता है तो वह तब अपना सब काम छोड़-छाड़ कर उसके साथ चिकित्सालय में जाता है, बड़े-बड़े डाक्टरों से मिलता-जुलता है, और उसे नीरोग स्वस्थ-सशक्त करने के लिए वह उसके सम्मुख अनुनय-विनय करता है। यह सब दौड़-धूप करने पर जब उसका भाई नीरोग, स्वस्थ हो जाता है, तब फिर वह फूला नहीं समाता

है। फिर जब वह पुनः सबल सशक्त होकर अपने घर परिवार में बैठ–बैठ कर वा उसके लिए दौड़–धूप कर–कर के अपने सब कर्तव्यों का पालन करने लगता है, अपने खेत–खलियानों वा व्यापार–व्यवहारों को संभालने में समर्थ हो जाता है, तब यह भाई प्रसन्न होकर प्रभु का धन्यवाद करता हुआ निश्चिन्त होकर अपने घर के व्यक्तियों के प्रति सजग हो जाता है।

मैंने देखा कि एक परिवार में तीन भाई हैं। बड़े और छोटे ने तो पढ़–लिखकर व्यापार कर लिया और अपना घर–परिवार बसा लिया। दोनों ही अपने घर–परिवार में प्रसन्न थे। मञ्जला भाई कुछ और अधिक पढ़ने–लिखने में लग गया और पढ़–लिखकर उसे एक अच्छी–खासी सर्विस भी मिल गयी। तब दोनों भाई सदा यह सोचते थे कि किसी तरह हमारे इस भाई का घर बस जाए। समय पर इसको खाने–पीने की सब सुख सुविधा हो जाय, यह घर–परिवार में सुख-सौभाग्य से अपना सारा जीवन व्यतीत कर सके तो उन्हें हार्दिक प्रसन्नता होगी। आखिर एक दिन जब यह सब कुछ हो गया तो इन दोनों भाईयों को बड़ी ही खुशी हुई। आज जब कभी भी ये दोनों अपने इस भाई के घर–परिवार में, इस भाई वा इस भाई के परिवार को देखत हैं, तो ये हृदय से प्रसन्न होते हैं, और भीतर ही भीतर हृदय से प्रभु का धन्यवाद करते हैं।

इसके विपरीत अगर एक भाई दूसरे भाई से द्वेष करे– अप्रीति करे, शत्रुता करे–वैर करे, तो फिर भला वह अपने इस

भाई का आदर कर सकता है? उससे प्यार कर सकता है? उसको देख वा सुनकर प्रसन्न हो सकता है? वह तो फिर उसके सुख–सौभाग्य को देख–देख कर वा सुन–सुनकर ईर्ष्या–द्वेष आदि से जलता–भुनता ही रहेगा, उसकी उन्नति वा बढ़ती देखकर तो वह आग–बबूला ही होता रहेगा। तब उसकी शंसा–प्रशंसा करने और सुनने में वह अपना एक क्षण भी लगाने से बचेगा, पर उसकी निन्दा–चुगली करने में और सुनने में अपने कई–कई घन्टे नष्ट करने में भी फिर उसको कोई ग्लानी नहीं होगी। फिर अगर भविष्य में कभी उसके भाई का अमङ्गल होगा तो भीतर ही भीतर से इस भाई को प्रसन्नता होगी, खुशी होगी, पर बाहर से लोक दिखावे मात्र के लिए फिर यह मगरमच्छ के आंसू बहाकर सहानुभूति का ही प्रदर्शन करेगा। इस प्रकार कहने को तो ये दोनों परस्पर भाई–भाई होंगे, समय समय पर लोक दिखावे के लिए ये एक दूसरे के पास भी खड़े वा बैठे होंगे, पर दिल से ये एक दूसरे के पास बैठना–उठना पसन्द नहीं करेंगे, परस्पर मिलकर खाना–पीना पसन्द नहीं करेंगे मिल–बैठकर प्रेम–पूर्वक बात-चीत करना पसन्द नहीं करेंगे, कहीं बैठ-उठ कर एक दूसरे को शँशा–प्रशंसा सुनना वा करना इन को नहीं भायेगा, हाँ एक दूसरे की निन्दा करने और सुनने में तब इनको भीतर ही भीतर से एक रस मिलता रहेगा, एक दूसरे की हानि वा अवनति देख-देख वा सुन सुन कर इनको एक प्रकार की खुशी सी मिलती रहेगी, तब ये सर्वथा एक दूसरे से दूर हो जायेंगे, कहीं राह चलते हुए या किसी सामाजिक

फँक्शन में एक दूसरे को मिलना वा देखना इन्हें भारी पड़ेगा, तब इनके स्त्री–पुत्र आदि भी यदि सौभाग्य वश एक दूसरे को मिलकर प्रसन्न होते होंगे, एक दूसरे से बात–चीत करते हुए खुश होते होंगे, एक दूसरे को खिला–पिला कर प्रसन्न होते होंगे, एक दूसरे की सहायता करके प्रसन्न होते होंगे, वा इनके नन्हें–मुन्हें बच्चे परस्पर खेल–कूद कर खुशी मनाते होंगे, तो तब इन भाईयों को यह सब कुछ भी नहीं भायेगा –यह सब कुछ भी देखना वा सुनना इन्हें नहीं अच्छा लगेगा। ये दोनों भाई तब कुछ ऐसा सोचेंगे वा करेंगे कि जिससे इस घर-परिवार के स्त्री-पुत्र आदियों, का प्यार भी समाप्त हो जाए। ये दोनों इस कार्य के लिए अपनी पत्नी एवं पुत्रों को रोकेंगे टोकेंगे, और अगर वे फिर भी नहीं मानेंगे तो ये उन सब पर क्रोध करेंगे, उन्हें पीटेंगे, भले हो उनकी इस वृत्ति–प्रवृत्ति का नारी और स्वच्छ हृदय बालकों पर कितना भी बुरा प्रभाव क्यों न पड़े, वे इसकी परवाह नहीं करेंगे। इस प्रकार घर–परिवार को, उसके स्नेह–सौहार्द को उस के परस्पर प्रेम प्यार, सहायता-सहयोग को सर्वथा समाप्त करने वाले दुष्परिणामों की सम्भावना के कारण ही से वेद सब को यह सदुपदेश देता है कि—" भाई भाई से द्वेष न करे–अप्रीति न करे, शत्रुता न करे, बैर न करे, वरन् वह उससे प्रेम करे, प्रीति करे, उसकी बढ़ती को देखकर फूला न समाए, उसकी उन्नति को अपने ही घर की–अपने ही कुल की–अपने ही खानदान की उन्नति समझकर उस पर अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव करे।

जैसे कि हरियाणा में एक किसान, जो कि दसवीं पास था। उसका मित्र जो कि एम० ए० पास कर चुका था। वह आकर उसे कहता है—"नेतराम ? तू तो अनपढ़ है, १० वीं भला कोई पढ़ाई होती है। १० वीं पास तो आज कहीं चपड़ासी भी नहीं लगते। मुझे देख, मैं ने सिर्फ बी० ए० ही नहीं किया बल्कि एम० ए० भी पास कर लिया है।' तब उसका वह कृषक मित्र कहता है, "भैया ! एम० ए० बड़ा होता है या डबल एम० ए० ?" तो इस पर वह बोला "नेतराम ! बड़ा तो भई, डबल एम० ए०ही होता है।" तो इस बात पर नेतराम बोला—"मित्रवर ! तू तो उससे भी नीचे है जो मुझे ऊँचा मानता है। सुन भाई,मेरा छोटा भाई डबल एम०ए० ही है। जब वह प्रातःकाल उठता है, तो वह मुझे अपने से बड़ा मानकर, मुझे पूज्य मानकर, बड़ी श्रद्धा और प्रेम से वह मुझे प्रणाम करता है। अब तू सोच कि वह मुझे बड़ा और पूज्य मानता है और डबल एम० ए० होने के कारण तू उसे अपने से बड़ा और योग्य विद्वान् मानता है, तो अब तू बता कि तू कैसे मेरे से बड़ा हुआ ? तू तो मेरे छोटे भाई से भी छोटा हुआ, जो कि मुझे अपने से बहुत बड़ा और पूज्य मानकर मेरा आदर-सत्कार करता है। इसलिये तू तो मेरे छोटे भाई से भी छोटा हुआ। तू तो उसके बराबर भी नहीं बैठ सकता ! मेरे बराबर तो तू बैठ ही कैसे सकता है !

छोटे भाई ने जब यह सुना तो वह बड़ा ही प्रसन्न हुआ -बड़ा ही खुश हुआ, और बोला कि-"ऐसे पूज्य भाई के पावन चरणों में अपना यह ज्ञान से भरा हुआ सिर धर कर जब मैं प्रणाम करता हूँ और वे जब मुझे दिल से

आशीर्वाद देते हैं, और सच्चे हृदय से भगवान् से जब वे प्रार्थना करते हैं कि वह प्रभु ऐसी कृपा करे कि जिससे मेरी विद्या बढ़े, मेरी आयु बढ़े, मेरा यश बढ़े, मेरा बल बढ़े, मैं सब तरह से आगे बढ़ूँ, ऊपर उठूँ, आदि-आदि, तो उस समय मुझे इतना अच्छा लगता है कि मैं बता नहीं सकता ! उस समय मैं इतना खुश हो जाता हूँ कि मेरी खुशी फिर मेरे में समाती नहीं, मुझे उस समय अपने दिवंगत पिता का भी भान नहीं रहता और मन ही मन में मैं सोचने लगता हूँ कि जो पितृतुल्य भाई स्वयं १० वीं पास होने पर भी मुझसरीखे पुत्र तुल्य छोटे भाई की विद्या पर-योग्यता पर गर्व अनुभव करता हुआ फूला नहीं समाता, उस दिव्य भाई पर मैं अपना सर्वस्व क्यों न वार दूँ।"

ऐसे हो एक परिवार में दो भाई थे जो वैसे तो उपर्युक्त वेदोपदेश के अनुसार बड़े ही प्रेम से अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे, पर न जाने क्यों एक दिन बड़े भाई ने अपने छोटे भाई को बुलाकर यह कह दिया कि—"भैया मेरा विचार है कि मैं भी घर-परिवार वाला हो गया हूँ, और अब तू भी गृहस्थ हो गया है। अतः अब हम दोनों अलग-अलग हो जायें।" इस पर छोटा भाई बोला- "पूज्य भैय्या ! क्या बात है ? क्या मेरी मातृतुल्य भाभी ने कुछ कहा है, या मेरे पितृतुल्य पूज्य भाई के दिल में कुछ अन्तर आ गया है ? मेरी इस पत्नी ने कुछ ऐसी बात कर दी है या फिर मेरे किसी व्यवहार से आप को ऐसा अनुभव हुआ है ?" बड़ा भाई बोला- "भैय्या !

अब कुछ भी समझ लो, अब मन में जब यह आ ही गया है, तो अब अलग ही हो जाएँ तो ठीक है।" छोटा भाई बोला- "भैय्या ! माता पिता के संसार से चले जाने पर मातृतुल्य पूज्य भाभी जी से एवं पितृतुल्य आप से जो मुझे प्यार मिला है, वह इतना आद्वितीय है कि मुझे कभी अपने मां–बाप का अभाव ही नहीं खटका, इसलिए मुझे उस मातृतुल्य भाभी और पितृतुल्य भाई से अलग होना बहुत ही कठिन लगता है। पर अब जब आपने ऐसा सोच ही लिया है, तो फिर अब पृथक होने के सिवा कोई और चारा भी तो नहीं है। तो "सुनो भैय्या ! मुझे तो कुछ चाहिए ही नहीं, न जमीन–जायदाद, न धन–वैभव, न ही मकान–दुकान··· । पर एक बात मैं सोचता हूँ, भैय्या ! अगर मैं और मेरी पत्नी यों ही घर से खाली हाथ चले गये तो संसार न जाने आपकी क्या–क्या बुराई करे, यह मैं नहीं कह सकता। पर आपकी बुराई, निन्दा किसी तरह भी मुझसे सहन नहीं होगी । क्योंकि मैं जानता हूँ कि आप क्या हैं। अतः मैं आँख बन्द कर लूँगा, और यह भी अगर सचमुच दिल से मेरी पत्नी होगी,तो यह भी मेरी तरह आँखें मूंद लेगी। आप जो भी कुछ मेरी ओर डाल देंगे, उसे ही अपनी मातृतुल्य भाभी और पितृतुल्य भाई का प्रसाद समझ कर मैं उठा लूंगा, और यहां से चल दूँगा। भगवान् ऐसी–कृपा करे कि मैं मन से भी कभी इस देवता स्वरूप मां–बाप के समान आप दोनों की कभी निन्दा न करूँ, सदा आप के उपकारों के प्रति कृतज्ञ रहूं। पर हाँ एक बात है कि जब कभी भी हमारी रसोई में आटा–दाल, शाक–भाजी न रही, तो मैं और मेरी पत्नी पुत्र–पुत्री तुल्य निःसङ्कोच अपने

बड़े भाई के घर दौड़े चले आयेंगे और भूखे-प्यासे बच्चों के समान अपनी मातृतुल्य भाभी जी की रसोई में घुस जायेंगे और कहेंगे-"भाभी ! नहीं नहीं हम कहेंगे- हमारी देवता स्वरूप मां ! तू भोजन बना, और हमें एक बार फिर उसी प्यार से और उसी लाड से खिला, जैसे कि तू पहले हमें खिलाया करती थी।"

"मेरे पूज्य पितृतुल्य भैय्या एवं मातृतुल्य आदरणीय भाभी ! मुझे संसार में धन-दौलत, जमीन-जायदाद आदि की जरा भी भूख नहीं है। हां भूख है केवल एक, वह है मातृ-पितृ सदृश आप दोनों की स्नेह से परिपूर्ण पावन छत्र-छाया की !"

यह सब सुनकर आर्द्र चित्त हुआ-हुआ पितृतुल्य बड़ा भाई दौड़ा और उसने अपने पुत्र तुल्य कृतज्ञ छोटे भाई को दिल से लगा लिया और बोला- "मेरे प्यारे भैय्या ! जब तक मैं जीऊंगा, संसार की कोई भी ताकत मुझसे अपने इस प्यारे और सब जग से न्यारे पुत्र तुल्य कृतज्ञ छोटे भैय्या को पृथक नहीं कर सकती··।" उधर भाभी ने अपनी पुत्रवधु तुल्य देवरानी को हृदय से लगा लिया और बोली- "प्रभुवर ! मुझे वह दिल देना कि मैं इसको आजीवन अपने आङ्गन की शोभा समझकर सिर-आंखों पर सदा बिठाए रखूँ।"

इस प्रकार यदि माता-पिता के अभाव में भाई-भाई वेदोपदेश के-वेदादेश के रंग में रंगे हुए हों, तो फिर भला उनके प्रेम में खटास कैसे पैदा हो सकती है ! वे तो फिर सदा राम-लक्ष्मण सम सदा एक रहेंगे और संसार के लिए सदा प्रेरणा के स्रोत ही बने रहेंगे।

यह है उपर्युक्त वेदोपदेश का आशय–यह है भगवान् के उपर्युक्त आदेश का अभिप्राय, जिससे कि भाई–भाई इस दुनिया में रहकर परस्पर स्वर्ग जैसा सुख भोगते हुए जहाँ अपना लोक सुन्दर बनाते हैं वहाँ अपने परलोक को भी दिव्य बनाने में समर्थ होते हैं। भगवान् सभी भाईयों को ऐसो सद्बुद्धि प्रदान करे कि वे इस वेदोपदेश को हृदयङ्गम कर तदनुसार आचरण करें।

****

अष्टम रश्मि :

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।

।। अर्थव ३–३०–३ ।।'

अन्वयार्थ :– (भ्राता भ्रातरं मा द्विक्षत्) भाई को चाहिये कि वह अपने भाई से द्वेष न करे–अप्रीति न करे–वैर न करे–शत्रुता न करे, (उत स्वसा स्वसारं मा द्विक्षत्) और बहिन को भी चाहिये कि वह अपनी बहिन से द्वेष न करे–अप्रीति न करे–वैर न करे–शत्रुता न करे।

इस मन्त्र में जैसे वेद ने सब भाईयों को यह उपदेश दिया है, यह आदेश दिया है कि वे परस्पर एक दूसरे से द्वेष न करें–अप्रीति न करें ···, वैसे ही सब बहनों को भी यह उपदेश दिया है, यह आदेश दिया है कि वे भी परस्पर एक दूसरे से द्वेष न करें–अप्रीति न करें–शत्रुता न करें–वैर न करें।

अब अगर सचमुच वेद के इस उपदेश के आधार पर-वेद के इस आदेश के अनुसार एक बहिन दूसरी बहिन से द्वेष न करे–अप्रीति न करे, अर्थापत्ति से यह निकला कि वह अपनी बहिन से प्रीति करे, अर्थात् वह अपनो बहिन को देखकर वा सुनकर तृप्त हो–प्रसन्न हो–खुश हो, तो फिर सहज ही जो बहिन अपनी बहिन को देखकर तृप्त–प्रसन्न वा खुश होगी वा फूली नहीं समायेगी, तो फिर सहज ही अगर वह बड़ी बहिन होगी, तो वह यह सोचेगी कि– "न जाने इस अपनी प्यारी छोटी बहिन को मैं कितना प्यार करूँ, कितना स्नेह करूँ, कितना लाड करूँ, न जाने इसको मैं क्या खिला दूँ, क्या पिला दूँ, क्या पहना दूँ, क्या दे दूँ

आदि-आदि।" इसी तरह यदि किसी छोटी बहिन को अपनी बड़ी बहिन मिलती है और वह उससे द्वेष नहीं करती- अप्रीति नहीं करती, अर्थापत्ति से अगर वह उस को देख वा सुन कर उससे प्रीति करती है- उसको देख वा सुन कर वह तृप्त होती है-प्रसन्न होती है-खुश होती है-फूली नहीं समाती है, तो फिर सहज ही वह अपनी मातृ तुल्य बड़ी बहिन को सिर आंखों पर बैठाना चाहती हुई सोचती है कि- " न जाने इसको मैं आदर-सम्मान पूर्वक कहां बैठा दूँ, क्या खिला दूँ, क्या पिला दूँ, कहाँ सुला कर विश्राम करा दूँ, आदि-आदि।"

सचमुच वेदोपदेश के अनुसार-इस वेदोपदेश के अनुसार अगर बड़ी बहिन अपनी छोटी बहिन से द्वेष नहीं करती अर्थात् वह उससे प्रीति करती है, उसको देख वा सुन कर तृप्त होती है-प्रसन्न होती है-खुश होती है, तो फिर जैसे पिता के अभाव में एक बड़ा भाई पितृ तुल्य होने से अपनी उस प्रिय छोटी बहिन को पिता के समान पालता-पोसता है, पढ़ाता-लिखाता है, और पिता के तुल्य ही वह उसके उज्जवल-सुखद भविष्य के लिये-उसके सुख-सौभाग्य से सम्मपन्न भावी उत्तम जीवन के लिये वह जी-जान से प्रयत्न करता है। ऐसे ही माता पिता एवं बड़े भाई आदि के अभाव में जो बड़ी बहिन होती है, वह भी यदि इस वेदोप- देशानुसार-इस वेदादेशानुसार उस अपनी प्रिय छोटी बहिन को देख वा सुन कर द्वेष नहीं करती-अप्रीति नहीं करती, अर्थात् प्रीति करती है, उसको देख वा सुन कर सदा तृप्त

होती है-प्रसन्न होती है-खुश होती है, तो फिर वह बड़ी बहिन ही मातृ रूप धारण करके अपनी छोटी प्रिय बहिन को पुत्री तुल्य पालती-पौसती है, पढ़ाती-लिखाती है, और उसके उज्जवल-सुखद भविष्य के लिये अच्छे से अच्छे वर की तलाश करती है-अच्छे से अच्छे घर-परिवार की खोज करती है, और वह उस अपनी लाडली प्रिय पुत्री तुल्य बहिन के लिये उसकी आन्तरिक भावनाओं के अनुरूप ही वर खोजती है, जो कि न कभी अण्डे-मांस खाता हो, न ही कभी बीड़ी सिगरेट-शराब आदि पीता हो, वरन् वह तो फिर उस से भी अधिक पढ़ा-लिखा हो, उससे भी अधिक बुद्धिमान् और समझदार हो, आस्तिक हो, अर्थात् ईश्वर और धर्म में जिसकी प्रगाढ़ आस्था हो, प्रति दिन जो सन्ध्योपासना करता हो, यज्ञादि शुभ कर्मों में भी वह बहुत रुचि रखता हो, इत्यादि । यह सब कुछ वह बहिन करती है, जो एक ही मां से जन्म लेने के कारण कहने को तो, उसकी बड़ी बहिन होती है पर मां के अभाव में वह जो भी उत्तरदायित्व निभा रही होती है तो उसका देख-देख कर लोग प्रेरणा लेते हैं ...। छोटी बहिन भी तब कहने को तो, उसकी छोटी बहिन होती है, पर उसके मातृतुल्य व्यवहारों को देख-देखकर उसके दिल में उसके प्रति तब ऐसी श्रद्धा उत्पन्न होने लगती है जैसे कि वह उसकी बहिन न होकर उसको जन्म देने वाली साक्षात् माँ ही हो, उसका पतिदेव जैसे कि उसका जीजा न होकर साक्षात् पिता ही हो, उनके पुत्र कहने को तो उसके भाञ्जे हों पर व्यवहारों में वे साक्षात् भाई ही होते हैं, लेखक ने

अनेकों बहिनें ऐसी देखी हैं जिन्हें अपनी बड़ी बहिनों ने अपने सहयोगी पति के साथ मिलकर मातृ–पितृ तुल्य पाला पोसा, पढ़ाया–लिखाया, संरक्षण दिया, और पुत्री तुल्य उस बहिन के उज्जवल सुन्दर भविष्य के लिए घर-वर खोज कर उसका विवाह कर दिया। और इतना ही नहीं, आज तक भी वे उसके प्रति मातृ-पितृ–तुल्य कर्त्तव्यों को निभा रहे हैं।

इस के विपरीत अगर एक बहिन दूसरी बहिन से द्वेष करती है - अप्रीति करतीं है–शत्रुता करती है–वैर करती है–दुश्मनी करती है। अर्थात् वह उसको देख वा सुनकर तृप्त नहीं होती, प्रसन्न नहीं होती–खुश नहीं होती, तो फिर उस बहिन को अपनी उस बहिन से मिलना भी बड़ा भारी लगता है, उसके साथ बात करना भी उसे समय बर्बाद करना ही लगता है, उसको खिलाना पिलाना, पालना-पोसना उसे फिर बहुत बड़ा भार प्रतीत होता है, फिर यही कहा जाता है कि—'हम क्या करें, इसके अपने कम ही ऐसे होंगे जो यह इस प्रकार बिना मातापिताके संरक्षण के रह गयी!हमसे तो अपने से उत्पन्न हुए जो दो–तीन बच्चे हैं, उन्हीं का पालन–पोषण आदि ही नहीं हो पा रहा है, इसको हम क्या सम्भालें।'तो इस प्रकार द्वेष–अप्रीति वह चीज जिसके कारण फिर इस छोटी बहिन को भी अपना बड़ा भाई भाता नहीं वा बड़ो बहिन भाती नहीं, न उसको देखना उसे भाता है, न उससे बात करनी उसको अच्छा लगती है,, न ही उसको कुछ खिलाना-पिलाना वा उसका आदर-मान करना उसको सुखद प्रतीत होता है। वह तो फिर उसको देखने भालने, मिलने–जुलने से भी कतराती है, उसके सम्बन्ध में किसी से फिर बात करना भी उसको भाता

नहीं। यही स्थिति बड़ी बहिन की भी लगभग हो जाती है। तो इस प्रकार द्वेष वह चोज है—अप्रीति वह चीज है, जो दोनों को परस्पर हृदय से इतना दूर कर देती है कि फिर उस दूरी को स्केल पैमाने से नापा नहीं जा सकता भूल चूक से वे दोनों कभी किसी सभा सोसायटी में कहीं परस्पर मिल भी गयीं –एक दूसरे के सम्मुख आ भी गयीं तो भी उनके हृदय को दूरी उन्हें एक दूसरे से स्नेह पूर्वक मिलने नहीं देती, मिल बैठकर एक दूसरे का कुशल–मंगल नहीं पूछने देती, एक दूसरे को मिल–बैठकर कुछ खाने–पीने नहीं देती, एक दूसरे को प्रेम पूर्वक कुछ लेने–देने नहीं देती, एक दूसरे के बाल–बच्चों का हाल–चाल नहीं पूछने देती, एक दूसरे के दुःख-सुख में एक दूसरे को इमदाद-सहायता-सहयोग नहीं करने देती, आदि आदि।

वास्तव में स्वसा कहते हैं बहन को जिसका कि अर्थ होता है—"सु-सुष्ठुतया (असु–क्षेपणे) अस्यते क्षिप्यते–स्नेह पूर्वक प्रदीयते पर कुलेषु वा या सा स्वसा। 'अर्थात् अच्छी तरह से पाल–पोस कर मर्यादा पूर्वक दूसरे कुलों में प्रदान किया जाता है, जिसे वह स्वसा कहलाती है। यदि एक बेटो ऐसी है जिसके माता-पिता वा पिता कभी नहीं रहते, तो पिता के अभाव में उसका पितृ तुल्य बड़ा भाई वा मातृतुल्य बड़ी बहिन उसको स्नेह-लाड पूर्वक अपनी सन्तति सम पढ़ा लिखा कर उसके हाथ पीले कर के उसका अच्छे घर-परिवार में विवाह कर देते हैं।

इस प्रकार माता पिता-भ्राता आदि के विषय में बहुत कुछ सोचने-विचारने पर भी हर बेटी–हर पुत्री वा हर स्वसा-हर बहिन अपने–अपने कर्मों के अनुसार ही अगले घर-परिवार को प्राप्त होती है। एक बहिन एक घर-परिवार में जाकर अपने पितृ कुल से बढ़कर बहुत धन-वैभव,और बहुत सुख-सौभाग्य से सम्पन्न हो जाती है और दूसरी अपने कर्मानुसार किसी ऐसे घर परिवार में चली जाती है जहां कि जीवन निर्वाह ही बड़ी कठिनाई से होता है, तो ऐसी अवस्था में भी बहिन बहिन से द्वेष न करे—अप्रीति न करे–ईर्ष्या न करे, घृणा न करे-नफरत न करे। वह यही सोचे कि उसको अपने कर्मों के अनुसार ही ऐसा सुयोग्य वर मिला, अच्छा धन–अवैभव सुख-सौभाग्य से सम्पन्न परिवार मिला और मुझे जो यह घर-परिवार वा गुजारा मात्र जिसमें चल सके, ऐसा घर मिला, यह भी अपने पिछले ही कर्मानुसार मुझे मिला है। फिर भी वह मेरी बहिन है, अगर वह मेरे से निम्न स्थिति में है तो मैं उससे घृणा न करुं, वरन उससे और भी बढ़कर प्यार करुं, उसकी कठिनाईयों में दिल से उसके साथ स्नेह-सहानुभूति और सहयोग करुं और अगर वह उच्चावस्था में है, धन–वैभव से सम्पन्न है, उसके पुत्र ही पुत्र हैं मेरी केवल लड़ाकयां ही लड़कियां हैं वह बड़े मजे में है, तो भी मैं उससे ईर्ष्या न करुं, उससे डाह न करुं, उसके धन–वैभव एवं पुत्रों को देख-देख कर जलूं नहीं-कुढूं नहीं, वरन् उस बहिन का यह सब देख-देख कर सदा प्रसन्नता का अनुभव करुं-खुशी महसूस करुं, प्रभु का हृदय से

धन्यवाद करूँ कि चलो एक बहिन तो ऐसी है जो सब प्रकार से प्रसन्न है – खुशहाल है–सुख–सौभाग्य से सम्पन्न है। उस के यहां कार भी है, उसकी अपनी कोठी भी है। भगवान् ने बच्चे भी उसे बड़े प्यार–प्यारे दिये हैं, जो बड़े ही अच्छे हैं, अच्छे खासे स्कूल में पढ़ रहे हैं, सुयोग्य हैं। भगवान् की कृपा से मेरी बहिन को कुछ आर्थिक कठिनाईयाँ भी नहीं हैं, आदि–आदि। उस बहिन के बढ़ते हुए यश को देख कर वह बहिन सदा यही अनुभव करती है जैसे कि उसका अपना ही यश बढ़ रहा हो। उसके बढ़ते हुए धन–वैभव, सुख–सौभाग्य को देखकर वह सदा यही अनुभव करती है कि-जैसे उसका अपना ही धन-वैभव, सुख–सौभाग्य बढ़ रहा हो। उसकी होती हुई प्रशंसा सुनकर भी वह ऐसा ही अनुभव करती है जैसे कि उसकी अपनी ही प्रशंसा हो रही हो। और अगर इसके विपरीत वह उसके उस बढ़ते हुए धन-वैभव, सुख-सौभाग्य, जमीन-जायदाद, कार-कोठी, पुत्र-पौत्री आदि को देख-देखकर उससे ईर्ष्या करती है, कुढ़ती है, वा द्वेष करती है–अप्रीति करती है वा उसे देख–देख कर अपने भाग्य को कोसती है, तो फिर वह इस बहिन से स्नेह की बात तो दूर रही, यह तो फिर उसकी तब शक्ल भी नहीं देखना चाहेगी। फिर तो वह सदा उसकी निन्दा करेगी और कहेगी कि—उसको अपने धन–वैभव का, कार–कोठी का, अपने पुत्र-पौत्रों का, अपने पति–पुत्र के पदों एवं प्रतिष्ठाओं का बड़ा अभिमान है –बड़ा गर्व है। ऐसा लगता है, कि जैसे उसी के पास ही यह सब कुछ आ गया हो।

पर इस धरती पर इनसे भी बढ़कर लाखों करोड़ों ऐसे बड़े लो
हैं। यह अपने को समझती क्या है? और इसके पा
यह सब कुछ अगर है भी और हमारे पास नहीं भी है, तो ह
कुछ इससे मांगकर थोड़ी ही खाते हैं। अपनी मेहनत
मजदूरी करते हैं–खून–पसीना एक करते हैं, फिर जो भ
कुछ मिलता है उसीमें ही हम अपना काम चलाते हैं। हमने जीवन
तो कभी चार पैसे भी इससे नहीं मांगे होंगे! हां छोटी बहिन हो
के कारण कभी मिलना हुआ तो कुछ न कुछ उसे दिया ह
होगा। और फिर इस माया का भी क्या ठिकाना! आज इन
पास है, कल इसको छोड़कर वह कहीं और अपना ठिकान
बना ले, तो फिर तब तो ये हमसे भी गए बीते हो जायंगे
इसलिये इस धन–वैभव आदि–आदि पर इसका अहँकार
रहना हमें जरा भी अच्छा नहीं लगता इत्यादि।"

इस प्रकार के ईर्ष्या-द्वेष भरे चिन्तनों से तो फि
मनुष्य का मन प्रायः खराब ही रहता है। और फिर ज
एक बहिन वा भाई का मन इतना खराब रहता है तो
दूसरी बहिन वा भाई का मन भी क्या अच्छा रहेगा? अ
कब तक अच्छा रहेगा? अतः वेद का उपदेश है—वेद
आदेश है कि हर बहिन को चाहिये कि वह अपनी बहि
से द्वेष न करे–अप्रीति न करे–शत्रुता न करे–दुश्मनी
करे–वैर विरोध न करे, ईर्ष्या न करे, घृणा न क
नफरत न करे, वरन् हर बहिन अपनी दूसरी बहिन
देख वा सुनकर उससे प्रीति ही करे–प्रेम ही करे–स्नेह ही क
लाड़ प्यार ही करे और अगर आवश्यकता पड़े

जी-जान से उसका सहयोग करे-उसकी मदद करे-उसकी इमदाद करे। और अगर बहिन बड़ी हो, तो उसका मान-सम्मान करे, उसकी आव-भगत करे-उसकी सेवा-शुश्रुषा करे-उसको मातृ तुल्य सिर-आंखों पर बैठाये। यही व्यवहार वास्तव में भाई-भाई को और बहिन-बहिन को परस्पर एक सूत्र में पिरोए रख सकता है, शरीर से भिन्न-भिन्न होते हुए भी हृदय से उन्हें एक बनाए रख सकता है, घर परिवार से अलग-अलग रखकर भी दिल से उन्हें एक बनाए रख सकता है, स्थान की दृष्टि से दूर-दूर वर्तमान होने पर भी हृदय से उन्हें सन्निकट बनाए रख सकता है, दोनों को भिन्न-भिन्न समस्याओं के रहने पर भी उनके निवारण के लिए उन्हें एक जुट होकर सोचने - विचारने एवं आचरण करने वाला बना सकता है। कहने को वे भले हों खरबूजे की तरह बाहर से पृथक-पृथक ही प्रतीत होते हों, पर वैदिक व्यवहार, उन्हें भीतर से खरबूजे की तरह एक ही रखता है। हाँ यदि वेदानुसार वे द्वेष से-अप्रीति से-शत्रुता से-वैर से-दुश्मनी से ऊपर कभी न उठ सकेंगे, तो फिर वे सन्तरे की तरह बाहर से एक प्रतीत होने पर भी बाह्य आवरण के हटते ही वे फांक-फांक के रूप में पृथक-पृथक भासने लगेंगे-शरीर से भले हो वे भाई-भाई वा बहिन-बहिन एक दूसरे से मिलते-मिलाते हुए दिखाई देंगे, पर हृदय से वे पृथक्-पृथक् होंगे। भले हो वे एक ही घर में वा एक ही शहर में वा एक ही जनपद वा प्रान्त के होंगे, पर हृदय से वे आपस में इतनी दूर होंगे कि देखने वाला दंग रह

जायेगा । इस प्रकार भाई-भाई की, बहिन—बहिन की वृत्ति-प्रवृत्तियों को देख-देखकर फिर उनको आने वाली पीढ़ियों पर भी वैसा ही प्रभाव पड़ने से तब उनमें भी परस्पर प्रेम नहीं वरन् द्वेष ही बढ़ेगा, आकर्षण नहीं वरन् विकर्षण ही बढ़ेगा। इसलिए हर एक भाई बहिन को यह चाहिए कि वह अपने भाई एवं बहिन के प्रति, प्रीतिमय-तृप्तिमय व्यवहार करे। अर्थात् वह ऐसा व्यवहार करे कि जिससे उसका भाई एवं बहिन तृप्त हो, प्रसन्न हो, खुश हो, ...।

नवम रश्मिः

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट । अ० ३. ३०.५ ।
हे बड़े बूढ़ों वाले विचारशील मनुष्यो, तुम एक दूसरे से वियुक्त मत होओ ।

(ज्यायस्वन्तः चित्तिनः मा वियौष्ट) हे बड़े बूढ़ों वाले वा बड़े–बूढ़ों का मान–सम्मान करने वाले, सम्यक् ज्ञान वाले विचारशील लोगो तुम मत वियुक्त होओ-मत अलग होओ

वेद में भगवान् ने घर-परिवार वा समाज में रहने वाले मनुष्यो को उपदेश दिया कि– (ज्यायस्वन्तः) हे घर–परिवार, वा समाज वा राष्ट्र में बड़े-बूढ़ों वाले अर्थात्-बड़े बूढ़ों के संरक्षण वा पावन शीतल छत्र–छाया में रहने वाले अथवा बड़े–बूढ़े, आयु, अनुभव और ज्ञान के धनी महानुभावों वाले, (चित्तिनः) सम्यक् ज्ञान के धनी, मननशील– विचार शील मनुष्यों ! (मा वियौष्ट) तुम एक दूसरे से कभी वियुक्त मत होओ- तुम एक दूसरे से कभी पृथक् मत होओ– तुम एक दूसरे से कभी अलग मत होओ ।

वेद में भगवान् घर-परिवार, वा समाज वा राष्ट्र में रहने वालों को उपदेश देते हैं "चित्तिनः"-सम्यक् ज्ञान वाले समझदार बुद्धिमान् मनुष्यों,तुम "ज्यायस्वन्तः" सदा बड़े-बूढ़ों वाले, सदा बड़े-बूढ़ों का मान-सम्मान करने वाले-सदा आयु-अनुभव और ज्ञान आदि से वृद्धों को प्रणाम करने वाले-सर्वदा उनकी पावन सुखद शान्तिमय शीतल छत्र–छाया में रहने वाले होओ।

(मा वियौष्ट) तुम कभी सेवा-शुश्रुषा में आलस्य के कारण वा प्रातः सायं सीधे–साधे, वड़े बूढ़ों को प्रणाम करने में अपना अपमान अनुभव करने के कारण वा उनको अपने गृहस्थ पर व्यर्थ का भार-बोझ वा बबाल समझने के कारण वा घर–गृहस्थ में जगह की तंगी के कारण वा बहुत बड़ी पोस्ट पर लगने पर घर पर आने जाने वाले बड़े बड़े लोगों के सामने, उन सीधे सादे, भोले–भाले वृद्ध माता-पिताओं. दादा–दादी के कारण अपने को हीन अनुभव करने के कारण वा उनके घर-परिवार में रहने पर अपने पर उनके खाने–पीने, रहने–सहने, दवा–दारु से अधिक खर्चों के भार से बचने के कारण तुम कभी उनसे वियुक्त मत होओ–पृथक मत होओ, -अलग मत होओ– विलग मत होओ ।

सचमुच अगर तुम 'चित्तिनः' सम्यक् ज्ञान वाले हो, बुद्धिमान् हो, समझदार हो, अक़लमन्द हो, विचारवान् हो, तो वेद के आदेशानुसार 'ज्यायस्वन्तः' तुम सदा चाहोगे कि तुम बड़े–बूढ़ों वाले होओ, तुम वृद्ध माता–पिता और दादी दादा वाले होओ। तुम सदा यह सोचोगे कि प्रभु कृपा से तुम्हारे सिर पर बड़े बूढ़े बने रहें–आयु अनुभव और ज्ञान से वृद्ध महानुभावों का वरद हस्त सदा तुम्हारे सिर पर बना रहे, उनकी शीतल पावन छत्र छाया आप पर बनी रहे। वास्तव में जिस घर–परिवार वा समाज में वृद्ध बने रहते हैं उसी में ही सदा पितृयज्ञ चल पाता है, उसी में ही पितरों को नित्य प्रति मान-सम्मान पूर्वक प्रणाम करके उनसे आशीर्वाद

लिया जा सकता है, उसी में हो उनकी श्रद्धा- प्रेम-भक्ति से सेवा-शुश्रुषा कर-कर के उनसे हार्दिक स्नेह और आशीर्वाद के बहे हुए स्रोतों में स्नान किया जा सकता है। यही वे चीजें हैं जिनके कारण उस वृद्धोपसेवी, अभिवादनशील मानव की आयु, विद्या, यश और बल सतत बढ़ता रहता है। कितने अद्भुत वाक्य निकलते हैं उन वृद्धों के मुख से जिनकी दिल से सेवा-शुश्रूषा की जाती है और जिनको श्रद्धा भक्ति से प्रणाम किया जाता है। जैसे-" बेटा जिरंजीव रहो ? बेटा जुग जुग जीओ, दूधों नहाओ पूतों फलो, बेटा जिधर को निकल जाओ, उधर से ही तुझे सर्वत्र मान-सम्मान--मिले, सेवा -सत्कार मिले, यश और प्यार मिले।"

कितना भी मूल्यावान् से मूल्यावान् भोजन क्यों न किया जाय, वह हमें चिरञ्जीव तो बना सकता है - दीर्घ आयु वाला तो बना सकता है, पर युग-युगों तक जीवित नहीं रख सकता। पर माँ बाप की भावना का क्या कहना, उसने तो समय पर व्यायाम और उपयुक्त भोजन के आधार पर बनने वाली दीर्घआयु को भी लांघ दिया। हमने माता पिता वा दादी दादा को प्रणाम किया वा कुछ सेवा शुश्रूषा की वा कुछ दवा-दारू वा कुछ ओषधोपचार किया कि उनके रोम-रोम से आशीर्वाद के सोते फूट निकले, और वे बिना स्विच आन किये ही प्रवाहित होने लगे "बेटा, चिरंजीव रहो- जिधर को निकलो लोग तुम्हें सिर आंखों पर बिठाएँ, तुम्हारी आव--भगत करें,

---

टिप्पणी १ अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्त आयुर्विद्या यशो बलम् ॥

और तुम्हारे गीत गाते–गाते न अघाएँ, तुम्हारी शंसा–प्रशंसा करते हुए नहीं थकें। वास्तव में घर–परिवार वा समाज के लिए ऐसे व्यक्ति वरदान होते हैं। इसलिए जो 'चित्ति' होगा– बुद्धिमान् होगा– अकलमन्द होगा, वह अपने को बड़ा ही भाग्यशाली समझेगा, जिसके घर पर ये पितृदेव विराजमान होंगे, ये आयु अनुभव और ज्ञान से वृद्ध महानुभाव सदा वर्तमान होंगे।

मुझे याद है कि चन्दौसी में एक मुख्य द्वार के अर्न्तगत चार मकान थे। एक एक करके उन चारों मकानों में चार परिवार रहते थे जो भारत पाक विभाजन के बाद वहीं आन बसे थे। एक घर में एक व्यक्ति रहते थे, उसी के घर के सामने उसके पहले श्वसुर पहली (स्वर्ग–सिधार गयी) पत्नी के पिता जी रहते थे। और उसके पास वाले मकान में उसके वर्तमान श्वसुर (वर्तमान पत्नी के पिता) और उसके वृद्ध भाई (आयु ९०-१०० के मध्य) रहते थे। उसके सामने वाले प्रथम श्वसुर के पड़ोस में इसके भाञ्जे रहते थे। एक ही जगह में चारों परिवार बड़े सुख से जीवन व्यतीत कर रहे थे। मैं एक दिन उस व्यक्ति के द्वितीय श्वसुर के बड़े भाई (आयु ९०–१०० में) से बातचीत कर रहा था, तो उसने प्रसंग वश कहा–"क्या बताऊँ! ये चारों घर के सदस्य इतने बेहोश होकर सोते हैं कि इन का कुछ भी कोई क्यों न कर ले इनको होश ही न आयेगा। इसलिए इन पर मुझे इतनी दया आती है कि मैं बता नहीं

सकता । रात को दो चार बार जब भी मेरी आंख खुलती है तो मैं इन चारों घरों की छतों पर खूब ऊपर नीचे, दाएँ–बायें देख भाल लेता हूँ, यह सोचकर कि कभी इनको कोई लूट–लूट कर बरबाद न कर जाए । अब बताओ वह वृद्ध दिन भर में तो दो एक रोटी वा दो एक प्याला चाय पीता है, घर में घटिया से घटिया स्थान पर स्वयं सोता और पुत्र पोतों आदि को खूब सुख – सुविधा देता है, उन्हीं के फटे पुराने वस्त्र और जूते पहन कर सुख–सन्तोष अनुभव करता है । सब लोग कार्य पर चले जाते हैं तो चारों घरों के बच्चों पर वह निगरानी रखता है कि कोई इनको कहीं हानि न पहुँचाए वा वे कहीं गुम–सुम न हो जाएं । सच बताओ ऐसा दिव्य चौकीदार कभी पैसों से मिल सकता है ? कभी नहीं– कभी नहीं !

एक व्यक्ति मुझ से मिला जो मैडिकल स्टोर चला रहा है । प्रसगवश वह एक दिन मुझ बता रहा था कि मैंने जब B-A. M-S का कोर्स किया, तो जहां मैं प्रेक्टिस करता था वहां मैंने अपने मेडिकल स्टोर पर दवाई बेचने का कार्य भी प्रारम्भ कर दिया । पिताजी ने दुकान ले दी और दो सहस्र रुपया मुझे देकर कहा कि–'बेटे' मैं तो यही कुछ दे सकता हूं । उसने कार्य प्रारम्भ कर दिया । अब २००० रु० में भला कितनी दवाईयां आ पातीं । मेरी दुकान पर प्रायः मेरे दादा जी आकर बैठ जाते और मेरे कार्य और व्यवहार को देखते रहते । उन्होंने क्या देखा कि प्रायः व्यक्ति

औषधि लेने आते हैं तो एकाध दवा देने पर मैं यही कहता हूँ कि -"अमुक दवा नहीं है, अमुक भी नहीं है, अमुक दवा परसों आने वाली है इत्यादि।" अब भला जिसको दवा अब चाहिये मरीज के लिये, वह परसों तक कैसे प्रतीक्षा करे। चलो हमारे यहां से उसे दवा नहीं मिली, कहीं और से वह ले लेगा। दादाजी ने यह सब देखा तो बड़े दुःखी हुए और बोले "बेटे ! जो जो ये मांगते हैं वह-वह दवाईयाँ तू मंगवाता क्यों नहीं ? इस पर मैं बोला- "दादा जी माल मंगाया है पर पूँजी नहीं है ! अभी ४५ रू० देकर एक पेटी माल छुड़ाना है, शाम तक कुछ बिक्री हो जायेगी, तब वह पेटी ले आऊंगा। मुझे उन्होंने जेब से ४५रू० दिये, मैं माल छुड़ा लाया। फिर बोले,"बेटा! कभी ग्राहक को मत कहा करो कि 'यह दवा नहीं, वह अभी नहीं है बरन् तुम कहा करो- "यह दवा अगर आप ४ बजे आ सकें तो मैं तुम्हें दे सकूँगा, यह दवा मैं आपको ५ या ६ बजे प्रदान कर सकूँगा और बेटा, जहां ४ बज जाएं झट अन्य दुकानों से वह दवा ला कर रख लो। फिर जब वे आयेगे तो उन्हें एक विश्वास जम जायेगा कि, "देर-सवेर यहाँ हर दवा मिल ही जाती है। अतः अन्य जाने की क्या आवश्यकता है।" मैं ४५ रु० देकर बिल्टी छुड़ा लाया और आइन्दा दादाजी की सीख के अनुसार कार्य करना प्रारम्भ किया। उधर दादाजी ने दो तीन दिनके बाद आकर मुझे ५०० रु० दे दिये और कहा कि-"बेटा, ये पैसे और ले ले, सम्भवतः इससे आपको अपने व्यापार में कुछ सुविधा हो सके, तो मुझे बड़ी ही

प्रसन्नता होगी। दादा जी तो चले गये पर मैंने उनके रुपयों को अपना सौभाग्य माना और उन्हीं के बताए अनुसार कार्य करता रहा। दादाजी तो आज संसार में नहीं रहे पर काय प्रारम्भ करने पर उनका मेरे समीप बैठना, प्यार से सम–झाना और ५००रु० देना और यह कहना कि-"देख, ग्राहक खाली न जाए, चाहे तू उसको कहीं से औषधि लाकर दे।" आज मुझे फुर्सत नहीं। भगवान् की कृपा एवं पूज्य दादा जी के आशी-र्वाद से आज मेरे पास भला क्या नहीं है? सब कुछ तो है! तो बड़े–बूढ़े तो वरदान होते हैं। जिसके सिर पर ये विद्यमान रहते हैं वे बढ़भागी हैं। जिन के यहां ये नहीं हैं, इस दृष्टि से वे भाग्यहीन हैं।

घर–परिवार में जब तक ये बने रहते हैं तो भले ही वे शरीर से कितने भी जीर्ण-शीर्ण क्यों न हों, इनके कारण घर परिवार में बहु–बेटियों को कोई आंख उठाकर भी नहीं देख सकता। बाल-बच्चों की भी सहज इनसे रक्षा–सुरक्षा होती रहती है। घर गृहस्थ में ये इतने सजग और चौकन्ने रहते हैं कि किसी भी वस्तु–व्यक्ति की हानि नहीं हो पाती। मुझे याद आती है एक घटना कि एक बार एक अतिवृद्ध माता अपनी बहू के साथ कहीं जा रही थी। सम्भवत: रुग्ण होने हकीम के पास जा रही थी। इतने में एक दुकानदार से उसकी बहु कुछ खरीदने लगी, तो राह में उसकी वहु पर किसी ने दुर्भावना से दृष्टि की और कुछ मर्यादाविहीन शब्द कह दिये। फिर क्या था, न जाने कहां से उसमें जान आ गई और

स्वाभिमान फूट निकला। उसने चप्पल उतारी और उसकी मुरम्मत करनी प्रारम्भ कर दी और मुख से उसको यह सुनाया कि वह भी क्या याद करेगा, कि कोई मिला था। वह पुनः पुनः हाथ जोड़ जोड़ कर क्षमा मांग रहा था, पर उस को भी तो उस माता ने ऐसा पाठ पढ़ाना था कि पुनः वह कभी बोले तो मुख सम्भाल कर बोले। सो ये वृद्ध तो रक्षक होते हैं। इनके रहते हुए भला कौन है जो घर को इन बहु-बेटियाँ को कुदृष्टि से निहारे !

दादी–दादा की कहानियाँ तो प्रसिद्ध ही हैं जो अपने पोते पोतियों को सुना-सुना कर जहां अपनी आने वाली पीढ़ी का वे मनोरञ्जन करते हैं, वहाँ वे उनके द्वारा अपने प्यारे-प्यारे बच्चों का कई दृष्टियों से ज्ञान वर्धन भी करते हैं। दादी–दादा के वर्तमान होने पर बच्चे तो फूलों और फलों को तरह ही पल पुस कर हरे भरे हो जाते हैं। उनके रहते हुए बच्चों के माता–पिता पर्याप्त निश्चिन्त रह पाते हैं। उनका लाड-प्यार भी बच्चों पर एक अपने ही ढंग का निराला ही होता है। मुझे स्मरण है कि जब दादी और घर परि-वार के वृद्ध जन हमें प्यार से चूम लेते थे वा हमे मट्ठा चावल आदि–आदि कुछ खिलाते पिलाते थे तो उनके प्यार में हमें अपने माँ बाप से बढ़कर एक विशेष तृप्ति मिलती थी–आनन्द मिलता था। क्योंकि उस समय जैसे हम खा–खा कर नहीं अघाते थे वैसे वे हमें खिला–खिलाकर अघाते न थे। उन बातों को स्मरण कर करके एक विचित्र से सुख की अनुभुति हमें

आज भी होती है। शब्द तो उस समय हमारे पास नहीं होते थे, पर हृदय प्रसन्न तो होते ही थे। आज भी भला हम उस अनूठे प्यार को शब्दों में अभिव्यक्त कर सकते हैं क्या ? सचमुच वे जब हमे कुछ खिलाती-पिलाती थीं तो वे फूली नही समाती थी। हम तब खाके भी इतने खुश नहीं होते थे जितनी कि वे खिलाकर प्रसन्न रहती थी।

कई जगह घर परिवार में बड़े-बूढ़े लोगों को भार समझा जाता है, और उन्हें घर से किसी न किसी तरह बाहर करने में अपना सुख सौभाग्य समझा जाता है। यह ठीक है कि कई जगह बड़े बूढ़े व्यक्ति भी बड़े सनकी होते हैं, स्वयं घर गृहस्थ के धन्धों से निवृत होकर भी हर काम में मीन-मेख निकालते रहते है, किन्ही बातों के लिए वे जिद्दी और हट्ठी भी प्रायः बने रहते हैं। चाहिये तो इस अवस्था में यह वे वानप्रस्थलें,पर यदि वे कि वानप्रस्थ आदि नहीं ले सकते तो घरमें भी वे वनस्थों जैसा-विरक्तों जैसा जीवन व्यतीत करें वे अपना आत्मनिरीक्षण करें कि बीते हुए गृहस्थाश्रम काल में हमने कौन-कौन से ऐसे कार्य किये जिनसे हम नीचे गए। और यह सब सोचकर उन्हें अपने आने वाले जीवन को दिव्य बनाने के लिये खूब प्रयास करना चाहिए। अपने ५०-६० के बीते वर्षों के अनुभव ये सन्तानों को समय आने पर जब वे पूछे तो सुना देवें। पर अगर वे वैसा न करें तो ये बहुत ज्यादा इरिटेट न हों, न ही ये उनकी निन्दा चर्चा करें। क्योंकि उनके एवं इनके जमाने में बहुत बड़ा अन्तर पड़ गया है।

हमारे गुरुकुल में एक इंग्लंड़ रिटर्न अध्यापक थे जो विदेशी छात्रों को विशेष समय देकर गुरुकुल में पढ़ाते थे। वे स्वभाव से कुछ मस्त ही रहते थे । उनके पुत्र बहुत बड़े आफिसर थे। उन्होंने अपने बच्चों के किसी शुभ संस्कार में अपने इन माता–पिता को बुला लिया । ये दोनों यहाँ से चले गए । वहां खूब दावतें उड़ रही थीं। बेटे के दोस्त साथी आदि खूब आते थे और खूब खाते पीते थे। यह सब कुछ जब उसकी माँ ने देखा तो उसको चिन्ता हुई और वह सोचने लगी कि यों तो मेरा बेटा बरबाद हो जायेगा, कंगाल हो जायेगा। उन्होंने दो चार दिनों में ही वहु को धीरे–धीरे समझाना शुरु किया और कहा –"बहु, सम्भल कर रहो, पुत्र तो मेरा भोला है-मूर्ख,है वो तो समझदार बना नहीं । ऐसे तो कल को वह भिखारी बन जायगा।" बहु बेचारी कुछ बोलती, तो उसे भय था कि– "दो चार दिन को आई हुई सास है, बुरा न मान जाएं या मेरा पति वा सुसर ही कुछ बुरा न मान जाए। वे सोचने लगी कि "इस बावली को क्या पता कि इसके बेटे का क्या स्टेटस है– क्या स्तर है। उधर उसने अपने पति के भी कान भरने शुरू कर दिये। वे "बोली–पतिदेव, बेटे पर तो मानो किसी ने जादू कर दिया हो, उसे होश ही नहीं है, मैं तो क्या कहूँ, आप ही कुछ समझायें न ! नहीं तो यह तो यों ही अपनी मूर्खता या वाह–वाही में लुट–पिट जायेगा।" इस पर उस व्यक्ति ने अपनी पत्नी को कहा– "बावली तू

काहे को चिन्ता करती है। हमारा समय और था इनका और। हमारी आय दो–ढ़ाई सौ थो इनकी ४–५ सहस्त्र। इनका अपना एक दायरा है हमारा अपना था। इनका अपने ढंग का एक क्षेत्र है हमारा अपना था। हमारे पास ऐसे १०–२० व्यक्ति भी आ जाते तो भी उस समय की आय में हमारा दिवाला निकल जाता पर इनके ५०० के सहस्त्र भी व्यक्ति आ जाएं तो भो तेरा बेटा साहब ही बना रहेगा–धनी ही बना रहेगा चिन्ता न कर। जैसे और खूब खा रहे हैं वैसे ही तू भी मेरे साथ मिलकर खूब घूम–फिर कर व्यायाम कर, डण्ड बैठक लगा और खूब खा–पी। काहे को परे–शान होती है। चार दिन के हम मेहमान हैं।" इस पर वह हँसी और बोली, आपको तो अपने इस बेटे की कोई चिन्ता नहीं पर मुझे तो इसकी बड़ी चिन्ता लग रही है। देवी जी, तेरा बेटा बहुत पढ़ा–लिखा गवर्नमेन्ट के लाखों के कार्य करता रहता है, सहस्त्रों वेतन लेता है, बहुत समझ–दार है पढ़ा लिखा है तभी तो गर्वमेन्ट ने उसको इतने ऊचे पद पर रखा हुआ है। उसे अपने घर-गृहस्थ की पर्याप्त चिता है। अपने घर की ही नहीं वरन् तेरी और मेरी भी इसे चिता है। तभी तो हमें पूछता रहता है कि माताजी-पिताजी मैं आपको क्या भेजूं? देवी जा! चिन्ता उसका कार्य है—चिन्ता घर गृहस्थों का काम है हमारा कार्य तो चिन्तन करना है, आत्म–निरोक्षण करना है, फिर अपने को संवार-सुधार कर प्रभु भजन करना है। चल, दो दिन का खेल

है, खूब डण्ड-बैठक कर और खूब मेरी तरह खा पी, और चल फिर हरिद्वार गुरुकुल कांगड़ी में । प्रभु की दी हुई इस सन्तान को जो अब समर्थ हो गई है, उसको आशीर्वाद देकर प्रभु भरोसे इसे छोड़, और प्रार्थना कर कि- "प्रभु, इन्हें ऐसी बुद्धि दे कि ये वह सोचें, वह करें जिससे इन का यश बढ़े… …।

सो कहने का अर्थ यह है कि जो अपनी वानप्रस्थ की आयु में भी घर–गृहस्थ से अपनी किन्हीं कमजोरियों के कारण वानप्रस्थी नहीं बन सकते, तो कम से कम उन्हें घर में तो कुछ थोड़ा बहुत निर्लेप सा रहना ही चाहिए, अन्यथा उनको कभी पछताना पड़ेगा, जब उनको हानि होगी ।

खैर घर में बड़े–बूढ़े कई बार अच्छे भी बहुत होते हैं- कई बार नहीं वरन् प्रायः करके वृद्ध अच्छे और घर परिवार समाज के लिए वरदान ही होते हैं । जैसे कि एक घर में दो बेटे हैं दोनों के कार्य पृथक–पृथक हैं। एक का दिल्ली में, दूसरे का फरीदाबाद में। पिता कुछ हार्ट के पेशेन्ट है। पर घर पर बैठे–बैठे भी दोनों बेटों के व्यापारिक कार्यों के प्रायः अधिकतर उत्तर वे ही देते रहते हैं, और ऐसे देते हैं तो दोनों बेटों के लिये उनका कार्य बडा ही सन्तोष प्रद और सुखद ही रहता है। बैंक के कार्य, हिसाब–किताब के कार्य, बिजली पानी आदि के कार्य, गाड़ी स्कूटर आदि को साफ करना, बच्चों को बस आदि पर चढ़ाने और उनको बस के लिए तैय्यार करने के

कार्य के लिये सब को सजग करना, प्रातः सर्वप्रथम उठकर द्वार खोलना, रात्रि को द्वार बन्द करना आदि-आदि अनेकों चिन्ताओं से वे अपने बहु-बेटों को मुक्त ही रखे हुए रहते हैं। यदि वे एक भी दिन के लिये कहीं बाहर चले जाएँ तो तब पता लगता है कि पिताजी के एक भी दिन घर पर न रहने से घर की क्या हालत हो जाती है। इस रुग्णावस्था में भी पिता का अपने ढंग का स्थान है और कार्य है। बेटे बाहर कार्य पर जब जाते हैं तो पिता कहता है कि- "बेटा, समय पर घर आ जाना। कभी गाड़ी चलाना, तो बेटा ध्यान से चलाना, जरा धीरे चलाना।" सचमुच जब मैं उन्हें देखता हूँ और उनके कार्य को देखता हूँ तो तब मुझे उनकी कीमत का पता लगता है। वह वृद्ध पिता कोई वेतन नहीं लेता, कम से कम खाता है, पर काम अधिक से अधिक करना चाहता है। पुत्र पौत्रों के उज्ज्वल भविष्य के लिये वह प्रभु से प्रार्थना करता है, पुरूषार्थ करता है। भले ही पुत्रादि थोड़े बहुत कभी गुस्सा भी हो कर कह जाएँ कि- "पिताजी, अब हम बच्चे नहीं हैं, काहे को आप जरा-जरा सी बात पर बोलते रहते हैं।" पर मुझे ऐसा लगता है कि कभी वे नहीं रहेंगे और ये बेटे कुछ प्रौढ़ आयु के हो जायेंगे, तो इस देवता स्वरूप पिता के ये वाक्य इनके कानों में तब गूँजते रहेंगे और इनका सहज ही भला करते रहेंगे। मां भी भले ही रसोई में कुछ कार्य नहीं कर पाती, पर फिर भी दो बहुओं में पक्षपात रहित होकर जो ये यथोचित न्याय से उन्हें कार्य देकर उनमें सामञ्जस्य बनाए रखती हैं। दोनों को अपने ही ढंग से सहलाती और समझाती बुझाती हैं, और कई ऐसे दिव्य

काय करके उन दोनों में वे ऐसा सन्तुलन बनाए रखती हैं कि मैं भी कभी देख–सुनकर दान्तों तले अँगुली दबाने लगता हूँ। मैं दिल से उनका मूल्याङ्कन कर उन बेटों से यही कहता हूँ कि–"प्रिय वत्सो। तुम सचमुच बड़े ही भाग्यशाली हो जो तुम को ऐसे देवता स्वरूप माता पिता मिले हैं जो आप दोनों के परिवारों में अपनी गुप्त सेवाओं और चिन्तनों के द्वारा तुम सब को एक सूत्र में पिरोए रहते हैं। यह कभी तुम्हें तब पता चलेगा जब ये नहीं रहेंगे। अतः तुम दोनों इनको वरदान समझकर इनका मान सम्मान करो–सेवा सत्कार करो। इस में सन्देह नहीं कि वे बेटे यह सब कुछ दिल से करते भी हैं। जब कभी उन्हें शारीरिक कष्ट विशेष हो जाता है तो मानो सारा घर–परिवार हिल जाता है और उस समय जो बेटे करते हैं या बहुएँ करती हैं, तो मेरे जैसे व्यक्ति के हृदय से भी उनके लिये रोम रोम से आशीर्वाद निकलता है। पिता की इच्छाओं पर वे अनेकों कार्यों को करते हैं। करें भी क्यों न, उन्होंने भी तो अपनी उस मां की भावनाओं पर हृदय से फूल चढ़ाऐ हैं जिन्होंने अपने छोटे–छोटे बेटों को पति के अभाव में बड़े ही तप से पाला–पोसा था।

ऐसे लोग जो इन बड़े–बूढ़े अनुभवी जनों को सिर आंखों पर बिठाए रखते हैं वे तो भाग्यशाली हैं, पर इनके अतिरिक्त अनेकों ऐसे भी हैं जो इन्हें भार समझते हैं, जो इन्हें अपने जीवन के लिये एक बहुत बड़ा बवाल समझते हैं। मुझे एक ऐसी माँ मिली जिसको मैंने कहा कि–"माँजी, आपके दो–तीन

बेटे हैं। वे बहुत ही अच्छे हैं। चाहे तुम किसी के पास रहो। सभी तुम्हें रखकर अपने को धन्य समझेंगे। इस पर वह माँ आह भर कर मुझे कहने लगी कि "बेटा, आज तो प्रायः सब बहु-बेटे मां-बाप को नहीं चाहते, वे तो अलग ही रहना पसन्द करते हैं।" मैंने कहा-"अम्मां! क्या आपको कभी उन्होंने कुछ कहा है क्या?" इस पर वह मां बोली, 'बेटा, बुद्धिमान् को संकेत-इशारा ही काफी होता है? वह तो उसी से बहुत कुछ समझ जाता है।"

ऐसे ही एक वृद्ध सज्जन को मैं दिल्ली देखने गया और कुशल मंगल पूछा, तो प्रसंगवश उसने अपने एक घनिष्ठ मित्र की कुछ वर्ष पूर्व की चर्चा की। वह बोले-"एक दिन घूमते हुए मैं उस मित्र के पास जा बैठा जो कुछ रुग्ण से चल रहे थे। उनसे हाल चाल पूछा तो वे बोले कि-"भाई साहब, रोग की तो बात जाने दो, जैसा है सो चल ही रहा है, पर एक बात और बताता हूँ जिससे हृदय को बड़ा ही दुःख हुआ। आज से कुछ वर्ष पूर्व जब मैं रिटायर हुआ था तो प्रोवीडेन्ट फण्ड आदि-आदि का मुझे ७५०००) रु० मिला, तो सोचा, मकान ही बनवालूं। सब सुख से रहेंगे। सो मेरे पास इसके अतिरिक्त और भी जो थोड़ा बहुत कुछ था, उस सब को मिलाकर यह मकान बनवा लिया। घर से पत्नी जल्दी ही प्रभु को प्यारी हो गयी, अर्थात् स्वर्ग सिधार गयी। घर में एक कमरा बहु का है, एक बच्चों के सोने का है, एक उनका Studyroom है। एक स्टोर आदि और एक ड्राईंग रूम है। भाई साहब ज मैं बीमार हो गया तो कुछ खांसी जुकाम सा

भी हुआ। स्वाभाविक था कि थूकना या खकारना भ होता ही है। कभी कबार थूक-खकार आदि बरतन से बाहर भी चले जाते थे। दोवार पर भी उनके कथन के अनु–सार थूक आदि चली गयी होगी। सो एक दिन जैसा कि कुछ मुझे पता लगा कि हमारी बहु ने अपने पति (अर्थात् हमारे पुत्र) से कहा—"पतिदेव! पिताजी की खाट अगर द्वार के पास वाले उस बरामदे में बिछा दी जाए, तो कैसा रहेगा?" उसे अपने पति ने अर्थात् मेरे बेटे ने अपनी पत्नी का कहा कि-ऐसा मैं कैसे कर सकता हूँ?" पत्नी बोली, "देखो, मुझे तो कुछ नहीं, इतने बड़े बूढ़े होकर भी उन्हें इतनी तमीज नहीं कि कहां थूकना चाहिये और कहां नहीं। सारी दीवार का बुरा हाल कर रखा है, जबकि इसके लिये पात्र पड़ा हुआ है। मुझे क्या है. घर में एक ही तो ढंग की जगह है कि जो ड्राईंग–रूम है बाकी तो सब छोटे-छोटे कमरे हैं। और उसको भी पिताजी थूक थूक कर सड़ा दें, तो फिर क्या किया जाए। और फिर मुझे क्या है, ड्राईंग रूम गन्दा होगा तो आप ही को शर्म आयेगी। क्योंकि मेरा तो कौन आता है, आप ही के मित्र–दोस्त वा कुलीक आदि आते हैं। घर को इस गन्दगी-गिलाजत का प्रदर्शन करना है तो पड़ा रहने दें उन्हें वहीं। और बच्चों की तो तुम्हें कुछ फिकर ही नहीं है कि कभी उन्हें भी इस सब से हानि हो सकती है। और फिर तुम तो ऐसा समझते हो जैसे कि मेरे तो वे कुछ लगते ही न हों।" इस पर पति बोले–'देवि! यह मकान तो पिताजी

की ही देन हैं। जितनी उनके जीवन को कमाई थी, यहां तक कि रिटायर होने पर भी जो कुछ मिला वह सब भी उन्होंने इसी मकान में लगा दिया, ताकि सब परिवार को सुख मिले। अब मैं कैसे उनसे कह सकता हूं कि आप बाहर बरामदे में सो जाओ। इस पर पत्नी बोली, "देखो पतिदेव! मैं कुछ उनका बुरा थोड़ी चाहती हूँ। एक जगह भीतर पड़ा-पड़ा व्यक्ति तो सड़ जाता है। मैं सोचती हूं, जब इनकी खाट बाहर बरामदे में चली जायेगी, तो रास्ते से आते जातों को देखकर, इनका जी भी लगा रहेगा। फिर उनका गद्दा, गिलाफ एवं बैड़ शीट आदि भी मैला हैं, मैं उसको भी बदल दूंगी, अर्थात् दूसरा साफ-सुथरा बिछा दूंगी। सचमुच जब वे बाहर चलें जागेंगे तो उनको ताजी हवा भी मिलेगी, और वे जल्दी स्वस्थ्य भी हो जायेंगी।" सो हाल पूछने वाले अपने मित्र से उन्होंने कहा-"भाई साहब, उस पत्नी ने अर्थात् मेरी बहु ने अपने पति से कहा-तुम आओ तो सही, कह तो सब मैं लूंगी।" सो पति भी पत्नी के पीछे पीछे पिता जी के पास आ गया। और वहां आकर मुझे बेटे ने कहा कि-"पिताजी, आप की खाट अगर बाहर बिछा दें तो आपको कैसा लगेगा, पिताजी बोले-"क्या कहा बेटा।" बेटा बोला-"पिताजी, जरा बाहर खाट बिछाने से आते जाते लोगों को देखैंगे, तो आपको बहुत अच्छा लगेगा। दिल भी लगा रहेगा। ताजी हवा भी लगेगी। स्वास्थ्य भी शीघ्र ही अच्छा हो जायेगा।" पिताजी अपने दोस्त से बोले कि-"मैं अभी सोच ही रहा था कि "मैं क्या उत्तर दूं ?" इतने में वहु अपने पति (अर्थात्) मेरे पुत्र से बोली

कि-"भला पिताजी को क्या इन्कार हो सकता है। आप उनके हाथ मे लाठी तो दो और हाथ का सहारा देकर जरा उन्हे उठाओ तो सही। मैं गद्दा-बैडशोट आदि भी बदल दूंगी। उनको छड़ी देकर सहारे से कुर्सी पर बिठाओ तो सही, उन विचारों को भला क्या इन्कार हो सकता है ? उनके लिए तो और भी अच्छा हो जायेगा।" इतने में बहु ने लाठी-बैंत दिया, बेटे ने सहारे से उठाकर कुर्सी पर बिठा दिया। मेरी खाट एवं गद्दा बैडशीट आदि बदल कर बाहर बरामदे में बिछा दिया गया। सो इन सर्दी की रातो में जब कि सारे परिवार के सदस्य कमरों में रजाईयाँ ओढ़कर सोते हैं, और मैं उसी दिन से बराबर ताजी हवा खा रहा हूं। मेरे लिये घर में अब स्थान नहीं है। बस अब तो मैं दिल से उस बहु-बेटे को देखना भी नहीं चाहता। यही प्रार्थना है कि प्रभु इन्होंने तो निकाल ही दिया, अब प्रभु ही अपना आश्रय दे,अपने बड़े घर में मुझे ठिकना दे।"अब भला ऐसे बड़े-बूढ़े पिता, जिसने अपना सर्वस्य वार कर वह घर बनाया पर आज उस मकान में उसको ही जगह नहीं। अब भला ऐसे वृद्ध महानुभाव के हृदय से उन बहु-बेटों के प्रति क्या स्नेह वा आशीर्वाद प्रवाहित हो सकेगा ! जिन्होंने कि उससे जीवन पाया-पालन पोषण पाया, अन्त में उनकी पूर्ण आय से बने इस भवन में आश्रय पाया, आज उसको तो वे क्या देंगे। वह तो उसी के बनाए मकान के भीतर भी उसे रहने देने पर राजी नहीं हैं। भले हा लोक-लाज से वे कुछ करते भी रहें तो भी कुछ नहीं करने के तुल्य है। मैं उस सज्जन की गाथा को सुनकर बड़ा हो दुखी हुआ, पर मैं भी भला क्या कर सकता था ?

ये वृद्ध, बड़े बूढ़े अनुभवी जन वस्तुतः गृहस्थ की एक अमूल्य निधि हैं। इनका बस चले तो ये अपना तन बेच कर भी अपने परिवार को सुख पहुंचावें। आज भी एक सज्जन हैं कि चारों पुत्रों को पृथक् कर देने पर शरीर से पूर्वापेक्षा कुछ रुग्ण एवं जीर्ण होने पर भी गौ सेवा कर १५-२० किलो पवित्र दूध निकाल कर अपने चारों बेटों को बांट देते हैं। वह यह सब कुछ करते हैं, तो बड़े ही तृप्त होते हैं। पुत्रों को तो उन्होंने पाला पोसा ही पर अब वे जब पोते-पोत्तियों को दूध–दही, छाह मक्खन घी और उस से बने हुए पदार्थ आदि खिलाते है, तो वे फूले नहीं समाते। बड़े बच्चों में से कोई भी तो ऐसा नहीं जो अन्य अनेकों कार्यो के साथ यह सब कुछ कर सके। पिछले कुछ दिनों में जब इनको घर में शारीरिक कष्ट हो गया, तो गौएं आदि भी कुम्हला गयी। तब उन सब पशुओं को पालनार्थ ग्राम में भेज दिया गया पर जहां वे कुछ स्वस्थ्य हुए, तो फिर दुग्ध दही आदि से अपनी बहु बेटियो वा पोतों–पोतियों को तृप्त करनें लगे। प्रातः काल जब पिता जी अपनी प्रत्येक पुत्रवधु को दुग्धादि देते हैं तो जहां बहुएं उनसे चार–चार, पांच–पाँच किलो दुग्ध आदि पाकर खुश और प्रसन्न होती हैं वहां यह भी उन बच्चों को दुग्ध, दधि, घृत, मक्खन, मट्ठा आदि खाते–पीते देखकर फूले नहीं समाते। सो ये वृद्ध क्या हैं, यह तो घर–परिवार वा समाज का अनुपम धन है, घर–परिवार वा समाज के लिये वरदान हैं, घर परिवार वा समाज की

महिमा हैं। जहां ये विद्यमान होते हैं, वही पर कुछ की परम्पराएं चलती रहती हैं, घर–परिवार की मान–मर्यादाएं टिकी रहती है। पर जहां ये नहीं होते है, उस स्थान पर तो दिन में भी अन्धकार रहता है। जहा ये रहते हैं वहां रात के अन्धकार में भी प्रकाश बना रहता है। जो सब परिवार के सदस्यों को राह दिखाता रहता है। इस लिये वेद में कहा गया है। कि-"ज्यायस्वन्तः" जो घर परिवार समाज वाले, बड़े–बूढ़े अनुभवी वृद्धों वाले होते है, जो इन सब का अपने घर–परिवार में मान-सम्मान करते रहते हैं, जो इनके खान–पान एवं रहन सहन की समुचित व्यवस्था करते रहते है, जो इनको सुख–सुविधा का, इनको सेवा शुश्रुषा का, इन के औषधोचार का खूब ध्यान रखते हैं, और जहां तक सम्भव होता है, ये उन्हें वरदान मान कर उन्हें सदा अपने पास बनाए रखते है, जो इनसे दिल से अलग नहीं होना चाहते है, वेद शब्दों में ऐसे व्यक्ति, "चितिन"–बडे हो समझदार होते है, बड़े ही बुद्धि-मान् हैं–बड़े हो अक्लमन्द है, बड़े हो विचारवान होते है, या यों कहिये कि जो समझदार बुद्धिमान-अक्लमन्द विचारमान होते है, वे सदा बड़े–बूढे अनुभवी जनों को अपने घर परिवार वा समाज में बनाएं रखना चाहते है, उनकी अपने यहां नित्य–प्रति–सेवा-शुश्रुषा करना चाहते हैं. उनको नित्य प्रतिमान-सम्मान पूर्वक–प्रणाम कर उनके आशीर्वाद से अपने को धन्य-धन्य करना चाहते है, और अगर कभी भी किसी कारण वश उनसे अलग भी होना पड़ता है या पृथक भी होना पड़ता है, तो वे उसको ऐसा महसूस करते है कि

जैसे उनकी कोई बड़ी भारी मूल्यवान वस्तु उनसे छिन गई हो–बड़ी भारी निधि उन से गुम हो गयी हो !

सो वेदानुसार तब बुद्धिमान्–अक्लमन्द–मनुष्यों को यह चाहिये कि वह इन बड़े–बूढ़े अनुभवियों को घर-परिवार में बनाए रखें, इनकी सुख–सुविधा का पर्याप्त ध्यान रखें, इनकी दवा और परहेज का ध्यान दें, इनके कपड़े–लत्ते आदि–आदि की सुन्दर-सुन्दर व्यवस्था करें, नित्य प्रति इनकी पूजा करें, इनका मान-सम्मान करें, इनको नित्य प्रति श्रद्धा से प्रणाम करें, और इनसे प्यार और आशीर्वाद को पाकर अपने को निहाल करें…।

दशम रश्मि:

अन्यो अस्यस्मै वल्गु वदन्त एत । अ० ३.३०.५ ॥

एक दूसरे के लिये मधुर बोलते हुए आगे बढ़ो।
तुम परस्पर एक दूसरे के प्रति मधुर बोल बोलते हुए आगे बढ़ो।

व्याख्याः- हे घर-परिवार वा समाज में रहने वाले मनुष्यों ! घर परिवार वा समाज में जब तुम रहोगे तो उसमें वृद्ध भी होंगे, युवा भी होंगे, और बालक भी होंगे। अर्थात् उसमें बड़े-बूढ़े भी होंगे, जवान भी होंगे, और बच्चे भी होंगे। ऐसा होने पर अगर तुम चित्ति' होगे-समझदार होंगे-बुद्धिमान् होंगे-अक्लमन्द होंगे-विचारशील होंगे, तो तुम उन सब से कभी भी वियुक्त नहीं होगे-अलग नहीं होगे। ऐसी अवस्था में वहां एक ही धुरा के नीचे रहकर काम करने वाले अर्थात् मिल-जुल कर कार्य भार को आगे बढ़ाने वाले होते हुए तुम सब परस्पर (अन्य: अन्यस्मै वल्गु-वदन्तः एत) एक दूसरे से सस्नेह-स्नेहपूर्वक मधुर बोल बोलते हुए आगे बढ़ो।

स्मरण रखिये कि भले ही तुम कितने भी बड़े समझदार क्यों न हो जाओ, बुद्धिमान्-अकलमन्द क्यों न हो जाओ, और समझदार होकर घर-परिवार में बड़े बूढ़ों वाले वा बड़े बूढ़ों का मान-सम्मान करने वाले-उनको सिर आंखों पर बिठाने वाले क्यों न हो जाओ, यहाँ तक कि तुम उन सबसे अलग-विलग भी नहीं होना चाहो, और भले हो तुम सब एक धुरा के नीचे वतमान रहते हुए मिल-जुल कर घर-परिवार एवं समाज को सब प्रकार से ऊपर उठाने और

आगे बढ़ाने वाले भी क्यों न हो जाओ, पर एक बात स्मरण रखिये कि अगर तुम्हें बोलना न आया, तुम को एक दूसरे के प्रति शिष्ट-सुन्दर एवं प्रिय बोलना न आया. अर्थात् तुम्हें परस्पर एक दूसरे के प्रति प्रेम–सौहार्द के साथ मधुर प्रिय बोलना न आया, अर्थात् तुम परस्पर एक दूसरे से मधुर प्रिय बोल नहीं बोल सके, परस्पर एक दूसरे के प्रति भी मीठे बोल नहीं बोल पाए, तो फिर हृदय से चाहते हुए भी तुम मिल कर के रह न सकोगे—एक उद्‌देश्य के लिए मिल–जुल कर कार्य नहीं कर सकोगे, वरन् तुम तो फिर एक दूसरे से अलग–थलग होकर अपनी अपनी डफली और अपना–अपना राग अलापते रहोगे ।

मुझे याद है कि पंजाब में एक सज्जन थे जिनके सम्भवतः ५ बच्चे थे। अर्धाङ्गिनी सम्भवतः तब साथ छोड़ गयी थी, अर्थात् स्वर्ग सिधार गयी थी, जबकि वे ४०–४५ वर्ष के ही थे। तब से वे बिचारे बच्चों को भोजन आदि बना बना कर खिलाते–पिलाते और स्कूल पहुंचाते रहे, और साथ–२ व्यापार आदि करते हुए, साधन भी जताते रहे। धीरे धीरे उन्होंने अपनी बेटियों का विवाह करके दो बेटों का विवाह भी कर दिया। एक बेटा बच गया जो कि अभी पढ़ ही रहा था। शरीर कुछ ऐसा रुग्ण था कि डाक्टर ने नमकादि भी बहुत हल्का खाने को बताया था। एक दो बार उसने अपने बहु–बेटे को कहा कि– "मेरे लिये जरा दाल–शाक में कम नमक डाल दिया करें।" दो चार दिन ऐसा होने के बाद पुनः वैसा ही सब होने लगा। तब उसने अपने बेटे से कहा··· "बेटा, बहु

को कह दो कि मेरे लिये पहले दाल–शाक बिना नमक के निकाल दिया करे या फिर थोड़ा नमक डालकर दाल–शाक बना लिया करे। फिर जिसको नमक कम लगे वे उनमें और डाल लिया करें। चाहे तो मेरे लिये दाल–शाक पृथक बना लिया करें ताकि मुझे फिर कोई कष्ट न हो, मेरा–शारीरिक रोग न बढ़ जाए, इस बात पर बेटे को बड़ा ही क्रोध आया और वह बोला– "पिताजी, खानी हो, तो चुप-चाप खा लिया करो नहीं तो ढाबे पर जाकर खा लिया करो।" यह सब कहकर वह लाठी लेकर पत्नी को मारने दौड़े, यह सोचकर कि यह कम्बखत नहीं मानती, यह सब देखकर उनके पिता दौड़े और बेटे की लाठी वाला हाथ पकड़ कर कहा- "बस बेटा यह सब नहीं करना······।"

बेटे के उन शब्दों का उस बाप पर जो प्रभाव पड़ा, वह ऐसा पड़ा कि उस व्यक्ति ने सोचा कि-" अब उसकी घर-परिवार में जगह नहीं रही। चार लड़कियों के बाद का यह लड़का था अतः बड़े लाड़–प्यार से उन्होंने उसको पाला–पोसा था। और उस दिन तो वे प्रातः काल २०० तोले सोना जो उनके पास था वह भी सन्ध्या करने के उपरान्त अपने हाथ में लिये हुए थे, यह सोचकर कि मैं अब इसका क्या करूंगा, दूसरे दोनों बेटे छोटे हैं, वे इसे सम्भाल नहीं पायेंगे। यह समझदार हैं। आगे चलकर इसके तीन हिस्से करके तीनों में बांट देगा, और अगर नहीं भी बांटा तो इसकी दो बेटियां हैं, उनके विवाह आदि में काम आ जायेगा। पर ज्यों ही जब उसने पुत्र को ये शब्द कहे

कि-जरा बहु को कहदो कि दाल-शाक में नमक कम डाल दिया करें और इस पर जो उपर्युक्त शब्द इस पिता को सुनने को मिले, तो झट उस पिता ने सोने को अपनी बगल में दबा लिया और एकान्त में जाकर सोच-विचार किया कि- 'अब इस घर में मेरी जगह नहीं है, अतः मुझे अब अपनी राह तलाश करनी चाहिये। सो बहुत रोकने पर भी वे अन्त में आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर में आ गए और दो सौ तोला सोना बेचकर पैसे बैंक में रख दिये। आगे चलकर घर में से भी बेटा उसको कुछ भेजता ही रहा। पर उन्होंने मुझे अनेकों बार वे शब्द सुनाए होंगे और जब भी वे उन्हें सुनाते रहे, तो दुःख के मारे विह्वल होते रहते। सहस्रों वैराग्य के उपदेश और भजन सुनने पर भी और मेरे प्रायः समझाने पर भी जब उनको बेटे के वे शब्द याद आते, और मुझे वे सुनाते, तो बड़े हो दुःखी होकर रोने लगते।

ऐसे ही एक दूसरा सज्जन है जिसके चार पुत्र हैं। चारों ही विवाहित हो गए, चौथा कुछ अधिक ही शराब आदि पीता था। एक दिन वह अपनी पत्नि को बुरी तरह मारने लगा, तो पिता से नहीं रह गया। वह झट आया और उसको हटाते हुए कहा कि-"आप मेरी बहु को नहीं मार सकते।" इस पर उसने पिता पर भी हाथ उठाया और जो उसका कुशब्दों से अपमान किया। इसका तो उन पर इतना बुरा असर हुआ कि उसने गृह ही त्याग दिया। वह सपत्नीक हरिद्वार आ गया। तब से वह यहां रह रहा है। अब यह घर जाने का नाम ही नहीं लेता। इन सब

कारणों से यही ज्ञात होता है कि अन्य सब बातों में ठीक रहते हुए भी मनुष्य को चाहिये कि वह ऐसा बोल बोले जो स्नेह–प्यार और मान–सम्मान से युक्त हो ! वल्गु कहते हैं सुन्दर–सुखद बोलों को।

बड़े–बूढ़े एवं अन्य सब परिवार के सदस्यों को घर–परिवार वा समाज के उत्थान में एक जुट होकर लगना चाहिये। ऐसा करते हुए वे सब परस्पर यह ध्यान रखें कि एक दूसरे से मधुर–प्रिय हो बोलें, विशेष कर वृद्धों से। क्योंकि वे सब और कुछ न भी चाहें पर स्नेह–सम्मान तो उनको चाहिए ही। क्योंकि–'मानो हो महतां धनम्।" बोल भो उनसे सुन्दर सुखद हो बोले जाएं। तभी ही उनकी आत्मा प्रसन्न होतो है। और प्रसन्न आत्मा उस घर परिवार वा समाज के लिए जो कुछ कर सकता है, वह अन्य कहां कर सकता है? चंडीगढ में एक परिवार में एक वृद्ध मां १३५ वर्ष को थी वह सुई में धागा स्वयं डाल लेतो थी। उसके घर के सभी सदस्य चाहे वे अपने कार्य पर जा रहे हों वा बच्चे स्कूल जा रहे हों, सभी उन्हें देवता मानकर बड़े आदर से उनके चरणों पर प्रणाम कर के ही जाते थे। इस पर उनके हृदय से आशीर्वाद भरे बोल जब निकलते थे तो सब बड़े ही प्रसन्न हो-होकर अपने कार्यों पर जाते थे। उनका कमरा ही मानो सब के लिये एक मन्दिर था। उस मन्दिर में स्थित मां दादी पड़ दादी आदि के रूप में वर्तमान उस देवता को सब पूजते थे। जिस दिन वह नहीं रहीं तो सब सोचने लगे कि अब अपने इस घर में स्थित इस मन्दिर में किस

हुए 'एत'-आगे बढ़ों–ऊंचे उठो । वह भी ज्ञान पूर्वक आगे बढो, ऊंचे उठो। ऐसे समझदारी से आगे बढ़ो, ऊपर उठो कि तुम्हें कुछ विशेष उपलब्धियाँ हों, तुम्हारी कुछ विशेष उन्नति हो, तुम्हारी कुछ विशेष प्रगति हो।

पिछले दिनों एक युवक का वाग्दान-सगाई हुई, तो फिर माता-पिता एवं सुसराल वालों ने कहा कि अब शीघ्र विवाह कर लो। तो इस पर वह अपने पूज्य पिता जी से बोले कि–" ५–७ मास सब्र करो, मेरी भी एक तीव्र इच्छा है कि मैं अपनी ट्रेनिंग विशेष में रीकार्ड बीट करु सो इस के लिए मुझे आप सब का प्यार और आशीर्वाद का सहयोग चाहिये।" जिन प्यार भरे बोलो से उसने यह सब बन्धु निवेदन किया, उसको सुनकर उसके माता-पिता भाई आदि ने उसको सहर्ष स्वीकार किया। और उसे दिल से लगाकर कहा–'बेटा तुम्हारी यह हार्दिक इच्छा–तमन्ना पूर्ण हो।" फिर क्या था उस युवक ने ९६.५ प्रतिशत अंक लेकर रीकार्ड तोडा। इस पर प्रसन्न होकर उसको उस संस्था ने साढ़े पांच तोले सोने का मैडल प्रदान कर यथोचित सम्मान दिया। उसने अपनी इस योग्यता से अपनी संस्था का मान बढ़ाया, माँ-बाप का नाम रोशन किया। इससे गवर्नमेन्ट ने उसको बहुत ऊँचे पद पर तुरन्त ही प्रतिष्ठत कर दिया। मां-बाप ही नहीं वरन् सुसराल के सब महानुभाव भी इस से फूले नहीं समाए। सचमुच जब घर–परिवार

चेतन देवता की स्थापना करें ?

घर-परिवार वा समाज में एक ही उद्देश्य की ओर अग्रसर होने वाले प्राणियों में जब परस्पर स्नेह नहीं होता, प्यार नहीं होता और परस्पर एक दूसरे से सुन्दर-सुखद वाणी का प्रयोग नहीं किया जाता, तो फिर वहां विघटन पैदा होता है, तब वे सब बिखरने लगते हैं। उन सबका फिर जो एक लक्ष्य होता है-जो एक उद्देश्य होता है-जो एक ध्येय होता है-"घर-परिवार वा समाज को ऊपर उठाना, आगे बढ़ाना" वह सब की आंखो से ओझल होने लगता है, और आजाती है यह चर्चा-यह चुगली-यही निन्दा आदि, कि-'उसने मुझे यह कहा और मैंने उसको यह कहा। उसने मुझे बुरा भला कहा पर मैंने उसको खरी-खरी सुना कर ईंट का जबाब पत्थर से दे दिया।" इस प्रकार बस फिर उनके भीतर का विवेक-समझदारी आदि सब काफूर हो जाते हैं। सभी दूसरे को फिर नीचा दिखाने पर तुल जाते हैं। जो धन-वैभव-शक्ति-बुद्धि और समय आदि कभी घर-परिवार वा समाज को उठाने में लगा करते थे वही अब उसी घर-परिवार वा समाज के विनाश में लग जाते हैं। धन-वैभव-शक्ति-बुद्धि-समय, निन्दा-स्तुति में वा लड़ाई-झगड़ों में, चर्चाओं में, मुकदमों में लग जाने से बड़ी हानि होती है। इस प्रकार जब घर-परिवार-समाज को उठाने का जब ध्येय ही समाप्त हो जाता है तो फिर भला उन्हीं की क्या उन्नति होगी ? इसलिये इस मन्त्रांश में एक बात और बड़ी सुन्दर कही गयी है, वह यह कि "अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत।" तुम सब परस्पर एक दूसरे से मधुर-प्रिय सुन्दर सुखद वचन बोलते

वा परिवार के सदस्य प्यार से जब मिल बैठते हैं और बुद्धिमानी से एक दूसरे के सम्मुख स्नेह पूर्वक अपने विचार रखते हैं। और वे विचार अगर सब की समझ में आ जाते हैं, तो फिर उन विचारों के आधार पर बना हुआ उस घर का वह उद्देश्य फिर उस एक व्यक्ति का नहीं वरन् सारे परिवार का बन जाता है। तब अगर उस घर का एक बालक वा युवक जी-जान से ध्येय के लिए रात दिन एक करके पढ़ता है तो मां-बाप अगर उस के समीप होते हैं तो वे उसकी सुव्यवस्था में रात-दिन एक कर देते हैं। उनके हृदय से, उनके रोम रोम से उसके लिये फिर प्यार और आशीर्वाद पूर्वक सहज ही प्राण प्रिय प्रभु से प्रार्थना होने लगती है। बच्चे आदि भी उस वातावरण से प्रभावित हुए-हुए उसके लिये अपने ढंग से प्रभु से पुकार करते हैं। कुछ ऐसा हो जाता है कि जैसे वह युवक ही नहीं सारा घर-परिवार ही उसके उद्देश्य में एक जुट होकर रीकार्ड बीट करने चला हो। जब यह सब कुछ हो जाता है तो बेटा अद्वितीय सफलता पा लेता है। घर-परिवार वा उस समाज में आते ही जब वह मां-बाप को आकर प्रणाम करता है तो माँ बाप स्नेह पूर्ण अश्रुओं से उसे दिल से लगाकर कहते हैं-"बेटा! तूने खूब मेहनत की, इसलिए तू अपने उद्देश्य में सफल हो गया।" बेटा बोलता है- "मां जी! पिताजी! मेहनत तो बहुतों ने की, पर मुझे लगता है मेरी मेहनत के साथ मेरी देवता स्वरूप मेरी मां का और देवता स्वरूप मेरे पिता का आशीर्वाद था, तभी यह ऐसा सब कुछ हुआ।" बहन बोली-"भैय्या! तू ने खूब मेहनत की और सफल हुआ। बोलो मुझे क्या खिलाओगे?" भैय्या बोला, बहन! तेरी प्रार्थना से ही तो यह सब कुछ हुआ है। तुझे कुछ नहीं

खिलाऊँगा तो फिर भला और किस को खिलाऊंगा।" श्वसुर को पता लगा। वह दिल्ली गया, उसको मिला और बधाई दी, तो उस होने वाले दामाद ने चरण छुए। श्वसुर ने बड़ा ही प्यार किया और कहा-बेटा, तू धन्य है। तू ने खूब मेहनत की।" वह बोला, "पिताजी ! मेरी मेहनत में उस समय रस आ गया जब आप सब ने मुझे शीघ्र ही विबाह पर मजबूर न करके उद्देश्य के प्रति मुझे प्यार से आशीर्वाद दिया। आप सब के प्यार और आशीर्वाद ने मुझे उठा लिया। मुझे लगता है कि वह मेरे परिश्रम का परिणाम नहीं, आप सब के प्यार और आशीर्वाद का परिणाम है।" उसके यह सब कहने पर उस के माता-पिता, श्वसुर आदि बड़े प्रसन्न हुए। सब वह मेडल उस घर-परिवार एवं ससुराल वाले हम सब को बड़े प्यार से ऐसे दिखाते रहे जैसे कि उन घर-परिवार, ससुराल वालों ने अपनी-अपनी मेहनत से उसे अर्जित किया हो। सच-मुच बात भी यही थी कि उस लक्ष्य को सिद्धि के लिये चहुं ओर से उन सब महानुभावों का अपना-अपना ही योगदान था, तभी वे सभी फूले नहीं समा रहे थे, परस्पर सब को बधाई दे रहे थे, और मिठाई खिला रहे थे। इसी विचार को लक्ष्य बनाकर ही तो वेद ने घर-परिवार वा समाज वालों को उपदेश दिया, कि-"अन्य: अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत" -तुम सब परस्पर एक दूसरे से मधुर-प्रिय सुन्दर-बोल बोलते हुए ज्ञान पूर्वक सब एक जुट होकर अपने उद्देश्य के लिए आगे-बढ़ो, ऊँचे उठो। अपने-अपने ढग से सब घर-परिवार वालों का लक्ष्य प्राप्ति में योगदान होना चाहिए, तभी ही उस में सहज सफलता मिलती है।